उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—४ मई—१९८५ अंक—५

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सह संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

एक आदमी अपने एक बच्चे को गोद में लिये और दूसरे बच्चे को अपना हाथ दिये हुए खेत की मेड़ पर से चला जा रहा था। चलते-चलते आसमान में एक चील को उड़ते देख दूसरा बच्चा, जो अपने पिता का हाथ पकड़कर चल रहा था, मारे खुशी के पिता का हाथ छोड़ ताली पीटते हुए 'पिताजी, देखो कैसी चिड़िया है' कहते हुए चिल्ला उठा। पर हाथ छोड़ते ही वह ठोकर खाकर गिर पड़ा। जो बच्चा पिता की गोद में था, वह भी खुश होकर तालियाँ बजा रहा था, पर वह नहीं गिरा क्योंकि पिता ने उसे पकड़ रखा था। इसमें से पहला बच्चा पुरुषकार का उदाहरण है और दूसरा ईश्वर निर्भरता का।

(२)

छोटे बच्चे कमरे में अकेले गुड़िया लेकर निश्चिन्त होकर अपनी ही धुन में खेलते रहते हैं। परन्तु ज्योंही वहाँ उनकी माँ आ पहुँचती है कि वे गुड़िया छोड़कर 'माँ, माँ' करते हुए उसकी ओर दौड़ पड़ते हैं। इस समय तुम लोग भी धन, मान यश आदि की गुड़िया लेकर संसार में मस्त हो खेल रहे हो, किसी बात की चिन्ता नहीं है। परन्तु यदि तुम आनन्दमयी माँ को एक बार भी देख पाओ तो फिर तुम्हें धन, मान, यश आदि नहीं भाएँगे। तब तुम सब छोड़कर उसी की ओर दौड़ पड़ोगे।

(३)

सच्चिदानन्द सागर में डूब जाओ। काम क्रोध-रूपी मगरों से मत डरो; शरीर पर विवेक-वैराग्यरूपी हल्दी लगाकर डुबकी लगाओ तो ये मगर तुम्हारे पास नहीं फटकेंगे।

(४)

ध्यान मन में, वन में या कोने में करना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण-स्तवन

श्री सारदातनय
रामकृष्ण मठ, नागपुर

सदा 'रामकृष्ण-रामकृष्ण' नाम गा मना।
(लगा) लगा लगन चरनन में मगन बना जा मना॥

प्रभू पूर्णकाम हैं
परम शांति धाम हैं
शुभकर चिर सुन्दर
नयनाभिराम हैं।

(जान) सत्य एकमेव वही, यह जग सपना मना॥

नाथ करें मोह नाश
भरें हृदय में प्रकाश
हरें कर्म-पाश
दूर करें सकल त्रास।

(उनकी) कृपा-दृष्टि मिटा दे समूल भवतृषा मना॥

वही परम सुख निधान
अकारण-करुणावान
सहज करें नतजन को
परम पद प्रदान।

(वही) कमल-चरण बना शरण, तज दे भ्रमना मना॥

(२)

राजत श्रीरामकृष्ण, नित्यमुक्त विगत तृष्ण॥
चिद्घन आनन्दमूर्त्ति, अविचल अविनाशी॥
प्रेमपूर्ण विमल वदन, आहैतुक कृपासदन।
कनक-काम लेशशून्य, हरत तिमिर-राशि॥
सुख निधान मोक्षधाम, लीलामय पूर्ण काम।
निरुपम नयनाभिराम, भक्त चित विलासी॥
करुणाधन अति उदार, नाशत भव दुःख भार।
प्रकटत प्रेमावतार, धन्य जगतवासी॥

*

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के नये अध्यक्ष

विवेक शिखा के पाठकों को बड़े हर्ष के साथ हम सूचित कर रहे हैं कि विगत १३ मार्च को रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के दसवें महाध्यक्ष स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज के महासमाधि में लीन हो जाने के उपरान्त रामकृष्ण मठ एवं मिशन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज का ग्यारहवें महाध्यक्ष के पद पर निर्वाचन हुआ है। महाध्यक्ष के पद पर श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्द जी महाराज का निर्वाचन बेलुड़ मठ की न्यासी परिषद् (Board of Trustees) तथा रामकृष्ण मिशन की प्रबन्ध समिति के सदस्यों के द्वारा विगत ९ अप्रैल, १९८५ ई०, मंगलवार को हुआ।

श्रीमत् स्वामी गम्भीरानन्दजी महाराज का जन्म सिलहट जिले (अब बंगलादेश) के साधुहाटी ग्राम में सन् १८९९ ई० को हुआ था। इन्होंने स्कॉटिश चर्च कॉलेज, कलकत्ता से बी० ए० करने के उपरान्त मई, १९२३ ई० में रामकृष्ण संघ में ब्रह्मचारी के रूप में प्रवेश किया। श्रीरामकृष्ण के अन्तरंग शिष्य स्वामी शिवानन्दजी महाराज ने इनको ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी थी। उन्होंने ही सन् १९२८ ई० में इन्हें संन्यास की दीक्षा दी।

ब्रह्मचारी सौम्य चैतन्य के रूप में ये सन् १९२६ ई० में रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, देवघर के सचिव बने और इसी पद पर १९३५ ई० तक वहीं बने रहे। बीच में १९२९-३१ में इन्होंने उद्बोधन में कार्य किया। इसी अवधि में वाराणसी के अद्वैत आश्रम में कुछ दिनों तक रहकर इन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया। सन् १९३६ से १९४१ तथा १९४४ से १९४७ ई० तक रामकृष्ण मठ एवं मिशन की कार्यकारिणी-समिति के सदस्य के रूप में इन्होंने महत्वपूर्ण सेवाएँ कीं। बीच की अवधि में तीन वर्षों तक इन्होंने प्रबुद्ध भारत (रामकृष्ण संघ की अँग्रेजी मासिक पत्रिका,) के संपादक के पद पर कार्य किया। तदुपरान्त १९५३ ई० से १९६३ ई० के १० वर्षों तक ये अद्वैत आश्रम, मायावती के अध्यक्ष रहे। मार्च, १९४७ ई० में ये बेलुड़ मठ के न्यासी (Trustee) नियुक्त हुए। उसी वर्ष के अप्रैल से १९५३ ई० तक तथा पुनः १९६३ ई० से १९६६ ई० तक इन्होंने सहायक सचिव के पद पर कार्य किया। तदुपरान्त १९६६ ई० में ही ये महासचिव बने और १९७९ ई० तक उसी पद पर रहकर इन्होंने रामकृष्ण मठ एवं मिशन में महत्वपूर्ण सेवाएँ कीं। अप्रैल, १९७९ ई० में इनका निर्वाचन एक उपाध्यक्ष के पद पर हुआ और रामकृष्ण मठ एवं मिशन के महाध्यक्ष निर्वाचित होने के पूर्व तक ये उपाध्यक्ष के पद पर अनवरत रूप से आसीन रहे।

रामकृष्ण मठ एवं मिशन के एक वरिष्ठ साधु होने के अतिरिक्त स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज एक प्रकाण्ड पंडित भी हैं। इनके द्वारा किए गये प्रमुख उपनिषदों, भगवद्गीता तथा ब्रह्म-सूत्रों के शांकर-भाष्य के अँग्रेजी रूपान्तरण और दस प्रमुख उपनिषदों, स्तव कुसुमाञ्जलि तथा सिद्धान्त-लेश-संग्रह के बंगला अनुवाद ग्रंथों ने पर्याप्त प्रसिद्धि और प्रशंसा प्राप्त की हैं। इनके अतिरिक्त अंग्रेजी में प्रणीत 'होली मदर श्रीसारदा देवी' और 'हिस्ट्री ऑफ रामकृष्ण मठ एण्ड रामकृष्ण मिशन' तथा बंगला में रचित 'श्रीमाँ सारदा देवी', 'युग नायक विवेकानन्द' (३ खंडों में) और 'श्रीरामकृष्ण-भक्त मालिका' इनकी मौलिक उल्लेख्य कृतियाँ हैं। इन्होंने 'द कम्पलीट वर्क्स ऑफ स्वामी विवेकानन्द' (आठ खण्ड) तथा 'एपॉसल्स ऑफ श्रीरामकृष्ण' नामक ग्रंथों का सम्यक् सम्पादन भी किया है। वेदान्त एवं रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य को इनकी प्रचुर साहित्यिक देन रही है।

इनके दीर्घ, स्वस्थ-सुखद जीवन एवं इनके द्वारा राष्ट्र में आध्यात्मिक चेतना के प्रसारण तथा रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सफल मार्गदर्शन के लिए हम भगवान् श्रीरामकृष्ण से आन्तरिक प्रार्थना करते हैं।

□

सम्पादकीय सम्बोधन

लोहे के पेड़ हरे होंगे

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

उस दिन एक विचित्र बात हुई थी। मेरे आवासीय भवन के आहाते में पिछले वर्ष एक अंगूर की लता लगायी गयी थी। वह लता हरी-भरी होकर काफी दूर तक फैल गयी थी। लेकिन अचानक वह सूखने लगी। और सूखने का क्रम इतनी तेजी से चला कि जाड़ा आते-आते उसकी एक-एक पत्ती झुलस गयी। इतनी हरी-भरी, प्यारी-प्यारी अँगूर की फैली हुई बेलें और किसी सुकुमार बच्चे की कोमल हथेली की भाँति मसृण पत्तियाँ! ये सब-की-सब झुलस चुकी थीं। अंगूर की उस मुरझायी लता को देखने का मन नहीं करता था। देखते ही जी उदास हो जाता। और एक दिन मैंने अपने मन में सोचा था कि क्यों न इसे उखाड़कर फेंक दूँ! लेकिन अंगूर की लता उखाड़ी नहीं गयी। वह वैसी ही सूखी डंठलों को लिए कंकाल की तरह फैली रही। मैं भी न जाने क्यों, स्नान करने जाता तो हर सुबह एक लोटा पानी उसकी जड़ में डाल देता।

और उस दिन एक विचित्र बात हो गयी। अंगूर की उन सूखी, कंकाल की भाँति कड़ी डंठलों में दो-चार हरी पत्तियाँ निकल आयी थीं। रामदेव—मेरा आवासीय कर्मचारी—दौड़ा आया कहने, 'देखिए, चलकर देखिए, अंगूर में नयी पत्तियाँ निकल आयी हैं।' वह फूला नहीं समा रहा था खुशी से। बड़ी मिहनत से उसी ने अंगूर की लता लगायी थी। उसके मुरझाने का उसे कम गम नहीं था। और ठीक ही, अंगूर की सूखी लता में इस गर्मी के मौसम में हरी पत्तियाँ देखकर मैं भी विस्मित, पुलकित और प्रसन्नचित्त हो उठा। रामदेव ने बताया, उसे किसी ने कहा था, अंगूर की लता के मुरझाने पर चिन्ता नहीं करने को। वह फिर हरी-भरी हो जायगी—समय आने पर। और आज तो उस लता में अंगूर के कई गुच्छे भी निकल आये हैं!

उसी दिन जब मैं कॉलेज पहुँचा तो देखा वहाँ एक गहमा-गहमी थी। प्राङ्गण में संगीनधारी पुलिस का दल तैनात था। कॉलेज के मुख्य द्वार पर ही एक मैजिस्ट्रेट खड़े थे—बड़े भद्र और सज्जन। वे विवेक शिखा के ग्राहक भी थे। मुझे देखते ही मुस्कुराते हुए कहा—"आपकी 'विवेक शिखा' निष्फल हो रही है। उसे पढ़कर भी लड़के आपस में छुरेबाजी करते रहते हैं। बम फोड़ते हैं। विद्यामंदिर को भी दूषित करते हैं। क्या परिणाम है 'विवेक शिखा' का?" इस प्रश्न के लिए मैं तैयार नहीं था। मैं भी मुस्कुराते हुए "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन—मैं काम करने का अधिकारी हूँ, फल तो भगवान के हाथ है!"—कहते हुए भीतर चला गया।

लेकिन यह बात सोचने की है। क्या शुभ वाणी को, भद्र वाणी का, मंगलमय वाणी का कोई प्रभाव आज का समाज स्वीकार करने को तैयार नहीं है? क्या नैतिकता, प्रेमाचरण और सहिष्णुता—ये शब्द केवल शब्दकोश के शृंगार बनकर रह गये हैं? हम कहते हैं, श्रीरामकृष्ण आये थे धर्म-स्थापन के लिए। एक नये धर्म के स्थापन के लिए। वह धर्म है 'जतो मत ततो पथ'—का। अर्थात् सबको अपने-अपने रास्ते से अपनी पूर्णता के, अपने देवत्व के, अपने परम भागवतस्वरूप के उद्घाटन का पूर्ण अधिकार है। हमें किसी को उसके सत्य-पथ पर चलने से रोकने-टोकने का अधिकार नहीं। चलने दो सबको दिव्यायन की ओर—परम प्रेममय

भगवान् के धाम की ओर— अपनी-अपनी मन चाही राहों से। हम कहते हैं, स्वामी विवेकानन्द आये थे हम में मनुष्यत्व के गौरव का बोध कराने। उन्होंने कहा था, Never forget the glory of human nature—मनुष्यत्व के गौरव को कभी भी भूलो नहीं, उन्होंने कहा था,— We Indians are non-worshippers, Our god is man—हम भारतीय निरुपासक हैं। हमारे देवता, हमारे आराध्यदेव मनुष्य हैं। उन्होने कामना की थी, हमारी आनेवाली पीढ़ी इसी मनुष्य की पूजा करे, इसी मनुष्य में शिव का, इसी नर में नारायण का, इसी मानव में माधव का साक्षात्कार कर उसकी सर्वतोभावेन उपासना-अर्चना करे। मानविकता की इससे बड़ी बात हमने कभी जानी नहीं, सुनी नहीं। लेकिन आज हो क्या रहा है? लोग पूछते हैं—कहाँ, श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द की अमृत-रस-सिक्त वाणी का कोई प्रभाव तो हम आज के आज के समाज में कहीं देखते नहीं। चारों ओर केवल स्वार्थ-परता, विषय-विकार, कामांधता, हिंसा, संघर्ष और घृणा की कुत्सित गंध ही फैली हुई परिलक्षित हो रही है।

लोगों के प्रश्न सही हैं। उस दिन उक्त मैजिस्ट्रेट ने जो प्रश्न हँसते हुए किया था उसमें दम था, गंभीरता थी, सोचने को प्रेरित करने की क्षमता थी।

हमें इतिहास की ओर लौटना पड़ेगा। भगवान् बुद्ध ने करुणा और अहिंसा का जो मंगलमय संदेश दिया उसने धीरे-धीरे सम्पूर्ण विश्व को एकबार प्रभावित किया था। किन्तु, संसार ने फिर उस करुणा को जैसे विस्मृत कर दिया। वह हिंसा और संघर्ष पर उतर गया। ईसा मसीह ने जिस प्रेम और क्षमा की अमृत-धार का संचार किया उसके माननेवाले यूरोपीय देशों ने ही दो-दो बार विश्वयुद्ध की तांडव लीला की। मोहम्मद साहब ने जिस भाई-चारे और समानता का दिव्य पाठ पढ़ाया उनकी संतानें ही आज आपस में मार-काट पर पशुओं की भाँति उतर गयी है। गुरु नानक ने जिस सर्वधर्म समादर की शिक्षा दी उसके माननेवाले ही आज आतंक का वातावरण बनाये हुए हैं। तो क्या इन दैवी संदेशों का, अमृत वाणियों का कोई महत्त्व नहीं है? क्या हमें ऐसी विषम परिस्थितियों में हताश और निराश होकर हाथ-पर-हाथ धरकर बैठ जाना चाहिए?

नहीं। यह तो आत्मघाती स्थिति होगी। संसार में जब-जब कुत्सा, अनाचार, संघर्ष और स्वार्थपरता का बोलबाला हुआ है महापुरुष मंगलमय संदेश लेकर आये हैं और उन्होंने अपनी संदेश-सुधा का पान कराकर मृतप्राय जनजाति को नवजीवन प्रदान किया है। आज हम जिस विषम परिस्थिति में पड़ गये हैं, उससे उबरने के लिए रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव के प्रचार-प्रसार की सर्वाधिक आवश्यकता आ गयी है। क्यों?

हम अपने समाज में, अपने चारों ओर जो विक्षोभ, आक्रोश, संघर्ष एवं असहिष्णुता देखते हैं, जो भोग-प्रियता, कामुक लम्पटता और व्यभिचार-अनाचार देखते हैं, वे हमारे रोग नहीं हैं—वे है हमारे रोग के लक्षण। रोग हमारा कहीं और है। हम सोचने लगे हैं कि इस देश का कल्याण संसद और विधान-मंडल में पारित प्रस्तावों के द्वारा होगा। हमारी चिंतन-धारा यह हो गयी है कि इस राष्ट्र के भावी भाग्य का निर्धारण चुनावों के जरिये होगा, सत्ता के हथियाने से होगा, राजनैतिक आन्दोलनों से होगा, वर्ग-संघर्ष के द्वारा होगा और किसान-मजदूर या अन्य वर्ग-संगठनों के द्वारा स्वीकृत प्रस्तावों, नारों, जुलूसों और जेल भरो अभियानों के द्वारा होगा। हम यह सोचने में लगे हैं कि राजीव गाँधी देश की समस्याओं का समाधान कर लेंगे या चौधरी चरण सिंह। हम इस उद्वेग में पड़े हैं कि हमें ज्योति बसु की ओर जाना चाहिए या चन्द्रशेखर की ओर। हमारा यही अभिशाप है। जब-तक हम अपनी चिन्तनधारा को राजनीति की ओर उन्मुख किये रहेंगे, हम जातिवाद, संकीर्ण स्वार्थपरता, अगला-पिछड़ा संघर्ष और हिंसा-बलात्कार आदि को रोक नहीं सकेंगे। हमारा मुख्य रोग यह है कि हम राजनीति और वैज्ञानिक विकासोन्मुख भौतिकवाद की

ओर जिस तेजी से लपक पड़े हैं, उसी तेजी से अपनी ऊँची आध्यात्मिक-नैतिक-सांस्कृतिक परम्परा से कट भी गये हैं। हमारी मुख्य समस्या हिंसा और मार-काट की घटनाएँ नहीं है, हमारी मुख्य समस्या यह है कि हमारे पांव अपनी धरती से खिसक गये हैं, हमारी आँखें अपने चन्दन-वन से हट गयी हैं, हमारे कान अपने अंतर के संगीत को सुनने में समर्थ नहीं रह गये हैं, हमारी जीभ आत्म-रस का आस्वादन कर नहीं पा रही है और हमारी त्वचा उस मलय समीर के स्पर्श से पुलक-बोध नहीं कर पा रही है जो हजारों वर्षों से हमें स्पंदित-रोमांचित करता था। यानी हमारी आध्यात्मिक संवदेनशीलता, नैतिक ग्रहण-शीलता, धार्मिक-सांस्कृतिक चेतनता कहीं से सूख गयी है। हम रुग्ण और बीमार हो गये हैं—भीतर से, अपने काफी गहरे से, अपने अन्तस्तल से।

रात अंधेरी हो। मूसलधार वृष्टि हो रही हो। घर में पैसे नहीं हों। और ऐसे में घर का कोई स्वजन यदि भयंकर रूप से बीमार हो जाय तो हम क्या करते हैं? हम छूट पड़ते हैं किसी चिकित्सक की ओर—अंधेरे की, वर्षा की, गरीबी की बिना परवाह किये हुए। कर्ज लेकर भी रोगी की चिकित्सा करानी ही होगी।

आज हमारा देश, हमारा समाज भयंकर रूप से रुग्ण है, अस्वस्थ है, बीमार है। संकट की इस विषम घड़ी में हमें, हमारे देश को, चिकित्सक की खोज करनी ही होगी। कौन हैं वे चिकित्सक जो हमें हमारे रोग से मुक्त कर सकेंगे? वे चिकित्सक हैं बिल्कुल हमारे समीप, अत्यन्त निकट श्री श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द।

श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द द्वारा हमारे रोग के निवारण के लिए प्रस्तुत नुस्खे हमें अपनाने ही होंगे। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा का सम्यक् अध्ययन कर और उन्हें अपने जीवन में ढालकर हम समता, स्वाधीनता, भ्रातृत्व, व्यक्ति-स्वातंन्त्र और सच्ची मानवता की उपलब्धि का मार्ग पा सकते हैं। हमें इनके द्वारा बताये गये राज-मार्ग पर चलना ही होगा—नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय।

आज भले ही हम सभी देवी-देवताओं को भूल जायँ, लेकिन मनुष्य में अन्तर्निहित देवता को, जीव में निहित शिव के शाश्वत, अक्षय और अमृत सम्बन्ध को भूलकर हम अपना सर्वनाश कर लेंगे। हम जीव को तो देखते हैं किन्तु उसमें निहित शिव को नहीं देख पाते। हमें उसे देखना होगा। उस देवता को पहचानना होगा। अर्थ, काम, नाम, यश और ऐन्द्रिक आसक्तियाँ अपनी जगह पर रहें। लेकिन हमारे जीवन का चरम लक्ष्य ईश्वर का, शिव का, मनुष्य के देवत्व का संधान करना ही है। श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द का यही मुख्य संदेश है।

संसार सर्वथा दोषमुक्त न कभी था, न कभी होगा। श्रीरामकृष्ण कहते हैं—संसार में चींटी की तरह रहो। इस संसार में नित्य और अनित्य दोनों मिले हुए हैं जैसे बालू में चीनी मिली रहती है। तुम्हें चींटी बनकर केवल चीनी को ग्रहण करना है।'

यह चीनी क्या है? यही है शिव। यही है मनुष्य का देवत्व। यही है त्याग, प्रेम, निःस्वार्थता। हमें इसी चीनी के आस्वादन के लिए अनन्त, अथक और अनाविल पुकार करनी है। हम करते रहेंगे यह पुकार। हम गाते रहेंगे वह गीत, जो जीव में निहित शिव को पहचानने की दृष्टि देता है, हम गाते रहेंगे वह गीत जो हमें त्यागपरायण, धर्मपरायण, निःस्वार्थ और प्रेमपूर्ण होने की प्रेरणा प्रदान करता है। हम श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द की अमृत वाणी-वीणा की मादक झंकार अविचल भाव से तबतक सुनाते रहेंगे जन-जन को, जबतक वे स्वस्थ और नीरोग नहीं हो जाते। हमारा विश्वास है—

लोहे के पेड़ हरे होंगे,
तू गान प्रेम के गाता चल
नम होगी यह मिट्टी जरूर
आँसू के कण बरसाता चल।

भगवान् श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द से हमारी आकुल प्रार्थना है कि वे हममें अपनी वाणी के प्रचार-प्रसार की, अपने संदेश—संगीत के सुमधुर गायन की क्षमता प्रदान करें। जय श्रीरामकृष्ण! जय स्वामी विवेकानन्द !!

▣

भगवान् बुद्ध के प्रति

—निराला

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट देख रहा; सुख के लिए खिलौने-जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन; केवल पैसे
आज लक्ष्य में हैं मानव के; स्थल-जल-अम्बर
रेल-तार-बिजली-जहाज नभयानों से भर
दर्प कर रहे हैं मानव, वर्ग से वर्ग-गण,
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ-से-स्वार्थ विचक्षण।
हँसते हैं जड़वाद ग्रस्त, प्रेत ज्यों परस्पर,
विकृत-नयन मुख, कहते हुए, अतीत भयङ्कर
था मानव के लिए, पतित था वहाँ विश्व मन
अपटु अशिक्षित वन्य हमारे रहे बन्धुगण;
नहीं वहाँ था कहीं आज का मुक्त प्राण यह,
तर्क सिद्ध है, स्वप्न एक है विनिर्वाण यह।
वहाँ बिना कुछ कहे, सत्य वाणी के मन्दिर,
जैसे उतरे थे तुम, उतर रहे हो फिर-फिर
मानव के मन में,—जैसे जीवन में निश्चित
विमुख भोग से, राजकुँवर त्यागकर सर्वस्थित
एकमात्र सत्य के लिए, रूढ़ि से विमुख, रत
कठिन तपस्या में, पहुँचे लक्ष्य को, तथागत!
फूटी ज्योति विश्व में, मानव हुए सम्मिलित,
धीरे-धीरे हुए विरोधी भाव तिरोहित
भिन्न रूप से भिन्न-भिन्न धर्मों में सञ्चित
हुए भाव, मानव न रहे करुणा से वञ्चित;
फूटे शत-शत उत्स सहज मानवता जल के
यहाँ-वहाँ पृथ्वी के सब देशों में छलके;
छल के, बल के पङ्किल भौतिक रूप अदर्शित
हुए तुम्हीं से, हुई तुम्हीं से ज्योति प्रदर्शित।

['सुधा,' मासिक, लखनऊ, जुलाई, १९४० से सभार संकलित —सं०]

□

कर्मयोग

—स्वामी यतीश्वरानन्द

अनुवादक—स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

कर्म और साधना

कर्म के समय भगवच्चिन्तन :

कुछ संन्यासी यह प्रश्न करते हैं कि जब कन्धों पर कर्म का भारी बोझा हो तब साधना में पूरा मनोनियोग करना कैसे संभव है ? कर्म व पूजा का संबंध न समझने के कारण यह प्रश्न उठता है । यदि कोई उत्तरदायित्व-पूर्ण कार्य न रहे तो सारा समय आलस्य में बीत जायेगा । सही दृष्टिकोण से किया गया कार्य ही भगवत्-पूजा है । हमें यह सोचना चाहिए कि मनुष्य परमात्मा का साक्षात् प्रतीक है । हमें सदा परमात्मा का संस्पर्श लाभ करने का प्रयत्न करना चाहिए जो भीतर और बाहर है । वह हमारे भीतर है और हम उसके भीतर हैं । हमारा छोटा-बड़ा सभी कार्य उसी परमात्मा के लिए है । कोई भी कार्य करते समय मन का तीन-चौथाई हिस्सा ईश्वरीय चिन्तन से भरा होना चाहिए । तब परिणाम अद्‌भुत होगा । पर हम कई सांसारिक बातें सोचा करते हैं जिनसे मन बिखर जाता है और कार्य भी बिगड़ जाता है । पूरी एकाग्रता से कार्य करने से मानसिक शक्ति संचित होती है । इसके बदले यदि हम समय को व्यर्थ गवाँ दें तो हमारी सारी मानसिक शक्ति बिखर जाती है और हमारी हानि होती है । कार्य के समय यदि हम भगवत् चिन्तन न करें तो भय, ईर्ष्या, काम, क्रोध आदि सभी प्रकार की भावनाओं व कामनाओं को हम प्रश्रय देंगे । इस तरह सारा समय और शक्ति नष्ट हो जाएगी । भगवत् चिन्तन भी मानसिक शक्ति की ही अभिव्यक्ति है, पर परमात्मा के चिन्तन से हम सीधे बल व शक्ति के स्रोत के ही सम्पर्क में आ जाते हैं । इस तरह हमें लाभ होता है ।

सदा अपने मन का विश्लेषण करो, देखो कितनी शक्ति का सदुपयोग हुआ है और कितनी व्यर्थ गवाँ दी गयी है । अहं-केन्द्रित गतिविधि सदा आध्यात्मिक दृष्टि से अहितकर होती है क्योंकि वह हमें प्रभु से दूर कर देती है । निस्वार्थ कर्म द्वारा हम दूसरों में प्रभु की सेवा करते है ।

सुनियोजित कर्म :

कर्म सुनियोजित रूप से करना चाहिए । अव्यवस्थितता किसी काम की नहीं । दिन भर में आधे घन्टे के लिए ध्यान, जप करके स्वार्थपूर्ण कर्म करने से कोई लाभ नहीं होता । जप के द्वारा हम परमात्मा के साथ सम्पर्क स्थापित करते हैं । कर्म के द्वारा भी हमें यही करना चाहिए । जप करते समय हमें याद रखना चाहिए कि हम पवित्रता, शक्ति, प्रेम व आनन्द के कारण स्रोत के सम्पर्क में आ रहे हैं और यही भाव कर्म करते समय भी बनाए रखना चाहिए ।

समयाभाव का प्रश्न :

हमें खाने-पीने, सोने आदि के लिए समय मिल जाता है । पर साधना के लिए नहीं मिलता ! हम मन

को सदा इधर-उधर भटकने देते हैं। कुछ लोग शिकायत करते हैं कि कार्य के समय भगवच्चिन्तन करने से वे कार्य ठीक से नहीं कर पाते। यह झूठी बात है। कोई भी व्यक्ति कार्य में अपनी पूरी मानसिक शक्ति नहीं लगाता। मन का एक भाग कार्य में रत रहता है तो दूसरा भाग इधर-उधर भटकता रहता है। कार्य के समय यदि भगवच्चिन्तन में मन को लगाया जाए तो आश्चर्यजनक परिणाम (फल) होगा।

यदि कोई यह कहे कि उसे कर्म की अधिकता के कारण ध्यान और जप के लिए समय नहीं मिलता तो यह असत्य है। यदि किसी कार्यवश हम समय पर भोजन नहीं कर पाते तो भी कार्य की समाप्ति पर भोजन कर ही लेते हैं। किसी-न-किसी तरह हम भोजन के लिए समय निकाल ही लेते हैं। भूख हमें इसके लिए बाध्य करती है। यदि हममें सच्ची आध्यात्मिक क्षुधा होगी तो हम कभी शिकायत नहीं करेंगे कि हमें साधना के लिए समय नहीं मिलता। कर्म व पूजा साथ-साथ करने से हम मानसिक सन्तुलन अर्जित करते हैं और यह जप और ध्यान में सहायक होता है। आलसी जीवन सदा ही व्यर्थ जाता है। निद्रा में हम अचेतन रूप से परमात्मा के सम्पर्क में आते हैं और शारीरिक व मानसिक ताजगी का भी अनुभव करते हैं। यदि ध्यान के समय चैतन्य रूप से हम परमात्मा से सम्पर्क स्थापित कर सकें तो उसका और अधिक प्रभाव हम महसूस कर सकेंगे। इसका यह अर्थ नही कि सोना नहीं चाहिए। यह शरीर के लिए अनिवार्य है।

अहङ्केन्द्रित कर्म :

सदा अपने मन का विश्लेषण करो—देखो कितनी शक्ति का सदुपयोग हुआ है और कितनी व्यर्थ गवाँ दी गयी है। अहं-केन्द्रित गतिविधि आध्यात्मिक दृष्टि से सदा अहितकर होती है क्योंकि वह हमें प्रभु से दूर कर देती है। निस्वार्थ कर्म द्वारा हम दूसरों में प्रभु की सेवा करते हैं।

सेवा को त्यागना नहीं, बल्कि उसे साधना के साथ करना हमारा आदर्श है। बहुत-से लोग समाज-सेवा करते हैं, किन्तु उनके पास आध्यात्मिक आदर्श नहीं होता। अतः उनके काम अहं-केन्द्रित हो जाते हैं। वे स्वार्थी हो जाते हैं। "आत्मनो मोक्षार्थ, जगद्धिताय च" —आत्मा की मुक्ति और जगत् का हित, यह आदर्श होना चाहिए।

पुरुषार्थ का महत्व :

जबतक व्यक्ति संसार में अपने घर में रहता है तबतक साधु बनने की उसकी इच्छा प्रबल रहती है। संघ का सदस्य या संन्यासी बनने पर वह समझने लगता है कि जीवन का लक्ष्य प्राप्त हो गया और तब वह चुपचाप बैठ जाता है, रुक जाता है। लेकिन घर पर रहने पर माता-पिता की देख-भाल, विवाह आदि की व्यवस्था, इत्यादि के रूप में अनेक बाधाएँ आती हैं। वह इन बाधाओं को दूर करने के लिए कड़ा संघर्ष करता है और इस तरह चरित्र-निर्माण करता है तथा बल प्राप्त करता है। उसमें शक्ति की अभिव्यक्ति होती है। हमें संघर्ष करना चाहिए जिससे हमारी शक्ति बढ़ सके। शक्ति की वृद्धि तथा उसे सही दिशा प्रदान करने के लिए कुछ व्यवधान आवश्यक हैं। नदी की उपयोगिता तबतक होती है जबतक उसका जल किनारों द्वारा रुका रहता है। किनारे का बाँध टूट जाने पर जल बह जाता है, संचित शक्ति नष्ट हो जाती है। अतः लक्ष्य की स्पष्ट धारणा के बाद हमें बाधाओं को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए।

यह आवश्यक नहीं है कि जीवन आसान हो। बाधाएँ होनी चाहिए, जिनका सामना सही दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। कर्म की तरह साधना में भी निर्देशों का उपयुक्त दृष्टिकोण बनाये रखना चाहिए। पूरी तरह पालन करते हुए नियमित रूप से मंत्र का जप किया जाना चाहिए। बेगार टालने के लिए माला फिराने से कोई लाभ नहीं होगा। जिस प्रकार दैनिक

वेतन पानेवाला मजदूर मजदूरी करता है, उस प्रकार जप नहीं करना चाहिए। यदि मजदूर पर नजर न रखी जाय तो वह समय बर्बाद करेगा। साधना करने का यह तरीका नहीं है। उसके लिए असीम पिपासा होनी चाहिए। सभी नारायण हैं, और हम नारायण की सेवा कर रहे हैं, यह भाव बना रहना चाहिए।

मन को सदा सन्तुलित रखने का सर्वश्रेष्ठ उपाय साधना है। पुरुषार्थ नितान्त आवश्यक है। भगवत्कृपा भी आवश्यक है पर गुरु-कृपा या भगवत्कृपा का उपयोग करने के लिए पहले मन को तैयार किया जाना चाहिए। घर में आग लगने पर जल के लिए प्रार्थना करने से क्या लाभ? कर्म भी करो और आन्तरिक प्रार्थना भी करो।

हमारे प्रयत्न बहुत महत्वपूर्ण हैं। एक विद्वान व्यक्ति की पत्नी उनको रसोई की देखभाल करने को कहकर बाहर चली गयी। दाल पक रही थी और उबलता हुआ पानी बर्तन से छलककर नीचे आग को बुझाने लगा। पतिदेव यह न जानकर कि क्या करें, अग्नि देवता से प्रार्थना करने लगे। इसी बीच पत्नी घर लौट आयी। उसने बर्तन में दो बूंद तेल डाल दिया और सब ठीक हो गया। तात्पर्य यह है कि कर्म और साधना दोनों साथ-साथ चलने चाहिए।

बिना प्रभु की इच्छा के एक पत्ता तक नहीं हिल सकता, हवा भी नहीं बह सकती। हम धन्य हैं, जो हमें यह सौभाग्य प्राप्त है कि हम उनके लिए कर्म करें, उनको सहायता देने के लिए नहीं। इस 'सहायता' शब्द को मन से सदा के लिए निकाल दो। तुम किसी की सहायता नहीं कर सकते। यह सोचना कि तुम सहायता कर सकते हो, महा अधर्म है—घोर ईश-निन्दा है। तुम स्वयं उनकी इच्छा से यहाँ पर हो। क्या तुम्हारे कहने का यह तात्पर्य है कि तुम उनकी सहायता करते हो? नहीं, सहायता नहीं, तुम उनकी पूजा करते हो जब तुम कुत्ते को एक ग्रास खाना देते हो, तब तुम कुत्ते की ईश्वर रूप से पूजा करते हो। ईश्वर उस कुत्ते में है—कुत्ते के रूप में प्रकट हुआ है। वही सब कुछ है और सबमें है। हमें उसकी आराधना करने की आज्ञा प्राप्त है। समस्त विश्व के प्रति यही आदर का भाव लेकर खड़े हो जाओ, और तब तुम्हें पूर्ण अनासक्ति प्राप्त हो जायगी। यही तुम्हारा कर्त्तव्य होना चाहिए? कर्म करने का यही उचित भाव है। कर्मयोग इसी रहस्य की शिक्षा देता है।

—स्वामी विवेकानन्द

विवेकानन्द साहित्य

खण्ड—नवम पृ० १८८

स्वामी विवेकानन्द और वैज्ञानिक टेस्ला

—ब्रह्मचारी प्रज्ञाचैतन्य
रामकृष्ण मठ, नागपुर

रात के सघन अन्धकार में आज जब हम बिजली का एक बटन दबाते हैं, तो सारा कमरा आलोकित हो उठता है। उस समय क्या हम सोच पाते हैं कि विद्युत-शक्ति को इस प्रकार वायु तथा जल के समान सर्वत्र सुलभ कराने के लिए कितने ही वैज्ञानिकों तथा आविष्कारकों ने अथक परिश्रम किया है? निकोला टेस्ला ऐसे ही वैज्ञानिकों में एक थे। सन् १८८२ ई० में ही यद्यपि लंदन तथा न्यूयार्क नगरों में विद्युत-वितरण के लिए डी० सी० करेन्ट के पावर-हाउस बनाये गये थे, परन्तु उनकी अपनी सीमाएँ थी, क्योंकि कम वोल्टेज का डी० सी० विद्युत अधिक दूर तक नहीं ले जाया जा सकता था। इसके फलस्वरूप एक ही नगर में कभी-कभी तो एक दर्जन से भी अधिक पावर-हाउसों की आवश्यकता हुआ करती थी। ए० सी० विद्युत को उस काल के प्रमुख वैज्ञानिकों ने खतरनाक कहकर विरोध किया था। निकोला टेस्ला ही ऐसे प्रथम वैज्ञानिक थे, जिन्होंने इसे निरापद सिद्ध किया तथा इसके व्यावहारिक उपयोग की पद्धति का विकास किया। उनकी ८०वीं वर्षगाँठ पर उन्हें सम्मानित करने के निमित्त यूरोप के अनेक नगरों में सभाओं का आयोजन किया गया था। चुम्बकीय परावर्तन के क्षेत्र में उनके कार्य को स्वीकारते हुए उसे 'टेस्ला' की संज्ञा दे दी गयी थी। १९१२ ई० में भौतिकशास्त्र का नोबल पुरस्कार उन्हें एडीशन के साथ संयुक्त रूप से देने की घोषणा की गयी थी, परन्तु उन्होंने इसमें अपना अपमान समझा तथा घोर अभाव में जीवन बिताते हुए भी उसे अस्वीकार कर दिया। १९४३ ई० में जब न्यूयार्क में उनका देहावसान हुआ तो तीन नोबल पुरस्कार विजेताओं ने उनकी शोक-सभा में भाग लेकर एक ऐसे व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की थी, जिन्होंने "अपनी असाधारण बुद्धि के द्वारा वर्तमान तकनीकी प्रगति के क्षेत्रों में पथ का निर्माण किया था।"

× × ×

अद्भुत प्रतिभा के धनी वैज्ञानिक टेस्ला का जन्म १० जुलाई, १८५७ ई० को वर्तमान युगोस्लाविया में हुआ था। आस्ट्रिया तथा प्राग के विश्वविद्यालयों में उन्होंने भौतिकशास्त्र तथा गणित का अध्ययन किया। प्रारम्भ से ही उनकी विद्युत में रुचि थी। २६ वर्ष की आयु तक बुडापेस्ट तथा पेरिस में कार्य करने के पश्चात् १८८४ ई० में वे अमेरिका गए और बाद में वहीं की नागरिकता ले ली। अगले वर्ष उन्होंने अपने कुछ डायनेमों, ट्रांसफर्मरों तथा मोटरों का पेटेन्ट अधिकार बेचकर न्यूयार्क में ही अपनी निजी प्रयोगशाला स्थापित की। रांटजन द्वारा एक्स-रे का आविष्कार करने के एक दशक पूर्व ही वे उस प्रकार के प्रयोगों में व्यस्त थे। १८८८ ई० में उन्होंने ए० सी० मोटर का आविष्कार किया जो आज भी सर्वत्र प्रयुक्त होता है। १८९१ ई० में उन्होंने टेस्ला क्वायल बनाया, जो अब भी रेडियो, टेलीविजन तथा अन्य विद्युत उपकरणों में प्रयुक्त हो रहा है। १८९३ ई० में उन्होंने बेतार रेडियो प्रसारण का विस्तार से वर्णन किया था, परन्तु मारकोनी ने शीघ्रतापूर्वक सारे पेटेन्ट ले लिये, जिन्हें बाद में १९४३ ई० में उच्चतम न्यायालय ने गैर-कानूनी करार दिया था। १८९३ ई० में शिकागो की ऐतिहासिक प्रदर्शनी में, जिसमें २ करोड़ ३० लाख

से भी अधिक दर्शक आये थे, टेस्ला की पद्धति से ही विद्युत् व प्रकाश की उपलब्धि करायी गयी थी। उसी समय से उन्हें विश्व भर में मान्यता प्राप्त हुई। इसके फलस्वरूप उन्हें नियाग्रा के प्रपात से जल-विद्युत् उत्पादन करने का कार्य मिला। १८९६ ई० में जब यह बनकर तैयार हुआ तो इससे ३५ किलोमीटर दूर तक विद्युत् पहुँचा कर बफेलो नगर में प्रकाश आदि की व्यवस्था की गयी थी। १८९८ ई० में उन्होंने दूर से नियंत्रित स्वचालित जलयान का आविष्कार करने की घोषणा की, जो उस काल में अकल्पनीय था। अतः लोगों के सन्देह प्रकट करने पर उसका सार्वजनिक प्रदर्शन किया गया। १८९९-१९०० ई० में उन्होंने 'टेरीटोरियल स्टेशनरी वेव' पर अपनी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण खोज की। फिर उन्होंने ४० किलोमीटर दूर खम्भों पर अवस्थित २०० बल्बों को बिना तार के माध्यम से ही जलाकर दिखाया तथा १३५ फीट लम्बा विद्युत् तड़ित् चमका कर प्रदर्शित किया।

टेस्ला के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आविष्कारों का हमने यहाँ अत्यन्त संक्षेप में वर्णन किया है। धन तथा नाम कमाने की कला में अव्यावहारिक होने के कारण उनकी खोजों का आर्थिक लाभ व यश दूसरे लोग ही पाया करते थे। धनाभाव के कारण उनके बहुत-से विचार व आविष्कार बिना परीक्षण व प्रचार के उनकी डायरियों में ही पड़े रह गये तथा इसी वजह से १९०० ई० में आरम्भ किया हुआ 'विश्व बेतार प्रसारण टावर' का निर्माण कार्य उन्हें अधूरा ही छोड़ देना पड़ा था। उनके मन में रेडियो मिसाइल व जेट विमान की कल्पना ही नहीं, विस्तृत योजना भी थी।

× × ×

स्वामी विवेकानन्द की निकोला टेस्ला के साथ मुलाकात हुई थी, पर निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उनकी प्रथम मुलाकात कब और कहाँ हुई। १८९६ ई० की जनवरी-फरवरी में जब स्वामीजी न्यूयार्क में प्रति रविवार को सांख्य के सृष्टितत्त्व पर व्याख्यान दिया करते थे, तब उनके बीच प्रगाढ़ मैत्री स्थापित हुई थी। टेस्ला तबतक काफी विख्यात हो चुके थे तथा अपने प्रयोगों आदि में इतना डूबे रहते थे कि उनके मित्रगण चिंतित हो जाते और उन्हें थोड़ा आराम देने के उद्देश्य से उनकी प्रयोगशाला में ताला लगाकर चाभी छिपाकर रख दिया करते थे। ऐसे अवसरों पर लोग विस्मित होकर देखते कि वे न्यूयार्क के ही हार्डमैन्स हाल अथवा मैडिसन स्क्वैयर गार्डन के सभा-गृह में खड़े हो व्याख्यान सुन रहे हैं, क्योंकि देर से आने के कारण उन्हें बैठने को जगह न मिल सकी थी। वक्ता थे—प्रसिद्ध हिन्दू योगी स्वामी विवेकानन्द। १९ फरवरी १८९३ ई० को वहाँ से 'ब्रह्मवादिन' पत्रिका के संवाददाता ने लिखा था—"आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ विद्युत विज्ञानी निकोला टेस्ला ने कुछ ही दिनों पूर्व स्वामीजी की सांख्य दर्शन की व्याख्या सुनकर....इसकी श्रेष्ठता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हुए कहा कि सृष्टि-विज्ञान की समस्याओं का समाधान करने के लिए आधुनिक विज्ञान सिर्फ कल्प, प्राण और आकाश के इस युक्तिपूर्ण सिद्धांत को ही मान्यता प्रदान कर सकता है।"

परवर्ती काल में स्वामीजी ने अपने कुम्भकोणम के व्याख्यान में टेस्ला के नाम का उल्लेख किए बिना ही कहा था—"पाश्चात्य देशों के कई बड़े-बड़े वैज्ञानिकों ने मेरे समक्ष स्वयं ही वेदांत के सिद्धांतों की युक्तियुक्तता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इनमें से एक वैज्ञानिक महोदय के साथ मेरा विशेष परिचय है। वे अपनी वैज्ञानिक गवेषणाओं में इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें स्थिरता के साथ खाने-पीने या कहीं घूमने-फिरने की भी फुरसत नहीं रहती, परन्तु जब कभी मैं वेदांत संबंधी विषयों पर व्याख्यान देता तो वे घण्टों मुग्ध होकर सुना करते थे; क्योंकि उनके कथनानुसार, वेदांत की सब बातें ऐसी विज्ञान सम्मत हैं, वर्तमान वैज्ञानिक युग की आकांक्षाओं को वे ऐसी सुन्दरता के साथ पूर्ण करती हैं, और आधुनिक विज्ञान बड़े-बड़े अनुसंधानों के बाद जिन सिद्धांतों पर पहुँचता है, उनसे इनका पूर्ण सामञ्जस्य है'।"

टेस्ला से अपनी व्यक्तिगत भेंट का विवरण स्वामीजी ने अपने एक पत्र में दिया था। १३ फरवरी १८९६ ई० को ई० टी० स्टर्डी के नाम लिखे हुए उस पत्र का अंश इस प्रकार है—"फ्रेंच अभिनेत्री सारा बर्नहार्ड यहाँ इजील (Iziel) नाटक में अभिनय कर रही है।....मैं इस बुद्ध नाटक को देखने गया था और मैडम ने मुझे श्रोताओं के बीच देखकर मुझसे मुलाकात करने की इच्छा प्रगट की।....एक प्रतिष्ठित और परिचित परिवार ने मिलने की व्यवस्था की। इनके अतिरिक्त वहाँ पर ....विद्युत विज्ञान में अति निपुण श्रीयुत टेस्ला भी थे।

"श्रीयुत टेस्ला वेदांतिक प्राण, आकाश और कल्प के सिद्धांत सुनकर बिल्कुल मुग्ध हो गये। उनके कथनानुसार आधुनिक विज्ञान केवल इन्हीं सिद्धांतों को ग्रहण कर सकता है। अब आकाश और प्राण, दोनों जगद्व्यापी महत्, समष्टि मन, ब्रह्मा या ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं। श्री टेस्ला समझते हैं कि गणितशास्त्र की सहायता से वे यह प्रमाणित कर सकते हैं कि जड़ और शक्ति दोनों ही स्थितिक ऊर्जा (Potential Energy) में रूपांतरित हो सकते हैं। गणितशास्त्र के इस नवीन प्रमाण को समझने के लिए मैं आगामी सप्ताह उनसे मिलने जा रहा हूँ। ऐसा होने पर वेदांतिक ब्रह्मांड-विज्ञान अत्यंत दृढ़ नींव पर प्रतिष्ठित हो सकेगा।"

क्या स्वामीजी के जाने पर टेस्ला उनके समक्ष पदार्थ (Matter) और शक्ति (Energy) का एकत्व सिद्ध कर सके थे? सम्भवतः नहीं, क्योंकि यद्यपि इसका कोई प्रत्यक्ष विवरण नहीं प्राप्त होता, परन्तु इस घटना के लगभग डेढ़ वर्ष बाद अपने लाहौर व्याख्यान में स्वामीजी ने थोड़ा संकेत दिया था। वे कहते हैं—"....हमने देखा कि सम्पूर्ण संसार को केवल दो तत्त्वों में पर्यवसित किया गया है, अभी तक हम चरम एकत्व तक नहीं पहुँचे।.... क्या इन (आकाश और प्राण) दोनों में भी कोई एकत्व पाया जा सकता है? ये भी क्या एक तत्त्व में पर्यवसित किये जा सकते हैं? हमारा आधुनिक विज्ञान यहाँ मौन है, वह किसी तरह की मीमांसा नहीं कर सका है।" इस उद्धरण से स्पष्ट है कि श्रीयुत टेस्ला अपने प्रयास में विफल सिद्ध हुए थे, तथापि सांख्य-वेदांत सृष्टि-विज्ञान की युक्तिवादिता उनके मन में घर कर गयी थी। १९०० ई० की 'सेंचुरी मैगजीन' में उन्होंने एक लेख लिखकर धर्म और नैतिकता को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने का प्रयास किया था, जिसमें उन्हीं आकाश, कल्प आदि शब्दों का प्रयोग भी किया गया था।

परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि शनैः-शनैः टेस्ला के विचार बदलते गये और १९०५ ई० में अल्बर्ट आइन्सटाइन ने जब अपने प्रसिद्ध समीकरण के द्वारा जड़ पदार्थ और शक्ति की एकता सिद्ध की, तो टेस्ला उनके प्रमुख विरोधियों में एक थे। उन्होंने बारम्बार यह घोषणा की कि अणुशक्ति एक कोरी कल्पनामात्र है और यह भी कि उन्होंने लाखों वोल्ट विद्युत-शक्ति से अरबों-खरबों परमाणुओं पर प्रहार किया है पर उनमें से कोई शक्ति नहीं प्रकट हुई। उनका यह हठ भी उनके जीवन का एक दुर्भाग्य था, पर अपने जीवन के सांध्य-काल में जाकर उन्होंने पदार्थ-शक्ति-एकता की वास्तविकता को स्वीकार किया। 'मानव की सर्वोच्च उपलब्धि' शीर्षक अपने एक लेख में, जो कि उनके जीवन काल में अप्रकाशित ही रहा था, उन्होंने लिखा—"काफी काल पूर्व उसने (मानव ने) लक्ष्य किया कि सभी स्थूल पदार्थ एक मूलभूत या अतिसूक्ष्म अचिन्त्य भूत से, आकाश या प्रकाशवाही ईथर से व्यक्त होते हैं, जिस पर जीवंत प्राण या क्रिया-शक्ति अनंत काल तक प्रतिक्रिया करते हुए सभी पदार्थों व दृश्य प्रपंचों की सृष्टि करती है। मूलभूत (पदार्थ) तीव्र गति के अनंत भँवरों में पड़कर स्थूल भूत के रूप में परिणत हो जाते हैं; फिर शक्ति घटते-घटते, गति रुक जाती है और पदार्थ लुप्त होकर अपने प्राथमिक मूल रूप में लौट जाता है।....

"भौतिक पदार्थ की सृष्टि और विनाश करना, अपनी इच्छा के अनुसार कार्य में नियोजित करना—मानव मन की सर्वोच्च अभिव्यक्ति होगी, भौतिक जगत् पर पूर्ण विजय कही जायगी, सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि होगी और जो उसे अपने सृष्टिकर्ता के निकट ले जाकर चरम पूर्णता तक पहुँचा देगी।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वामी विवेकानन्द ने इन महान् वैज्ञानिक के मन-बुद्धि पर इतनी गहरी छाप छोड़ी थी कि यद्यपि वे धीरे-धीरे उनसे दूर चले गए पर अंत में उन्हें लौट आना पड़ा था और लगभग ५० वर्ष की दीर्घकाल के अंतराल के बावजूद उनके भीतर स्वामीजी के ही विचार व शब्द प्रतिध्वनित हो रहे थे। □

हिन्दू सभ्यता

श्री रामधन दास
Z-13, हाउस खास, नई दिल्ली — 16

हिंदू सभ्यता विश्व की प्राचीन सभ्यता है। विभिन्न भाषा एवं धर्म की अगणित शाखाएँ जैसे, वैष्णव, शाक्त एवं गाणपत्य, विभिन्न साधना पद्धति, जैसे द्वैत, अद्वैत एवं विशिष्टाद्वैत इत्यादि से परिवेष्टित हिंदुओं की अगणित जातियों एवं उपजातियों की व्यवस्था इत्यादि के गुणों से समुद्भूत यह हिंदू सभ्यता है। वस्तुतः यह अतिविचित्र समझी जाती है।

लोग अक्सर कहते हैं कि अंग्रेज जाति में जो राष्ट्रीय एकता है, मुसलमानों में जो भ्रातृ-भाव है और यूरोपीय ईसाइयों में जो धार्मिक एकता देखी जाती है ऐसी एकता हिंदुओं में कहाँ है? वे लोग कहते हैं कि इसी विभिन्नता के कारण मध्य युग में मुसलमानों से हिंदू पराजित हुए थे तथा इस युग में भी इस जाति का पतन हो रहा है।

किंतु इस प्राचीनतम सभ्यता पर यह दोष मढ़ना ठीक नहीं है। शांति से इस विषय पर गंभीर विचार करने की आवश्यकता है। देखा जाए तो यह हिंदू सभ्यता विश्व में प्राचीनतम है। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में : "जब यूनान का अस्तित्व नहीं था, रोम भविष्य के अंधकार-गर्भ में छिपा हुआ था, जब आधुनिक यूरोपियनों के पुरखे घने जंगलों के अंदर छिपे रहते थे और अपने शरीर को नीले रंग से रँगा करते थे, तब भी भारत क्रियाशील था। उससे भी पहले जिस समय का इतिहास में कोई लेखा नहीं है, जिस सुदूर धुँधले अतीत की ओर झाँकने का साहस परंपरा को भी नहीं होता, उस काल से लेकर अबतक न जाने कितने ही भाव एक के बाद एक भारत से प्रसृत हुए हैं।"

(विवेकानन्द साहित्य : पंचम खण्ड पृष्ठ ६)

इसी प्रकार भारत में विद्या, बुद्धि, आध्यात्मिक ज्ञान, अर्थ, सामर्थ्य, शिल्प, कला, साहित्य, विज्ञान आदि में इन्हीं हिंदुओं ने श्रेष्ठतम स्थान प्राप्त किया था, जिसको देखकर विश्व में विद्वान प्रशंसा करते थे। पांचवीं शताब्दी में चीनी विद्वान फाह्यान, सातवीं शताब्दी में ह्वानसांग हिन्दू सभ्यता, संस्कृति, विद्या और धर्म में उन्नति देखकर आश्चर्यचकित हो गये थे। उनके ग्रंथों में हिन्दू सभ्यता की प्रशंसा लिखी हुई है।

प्रश्न है कि भारत इतना गुणसम्पन्न और इतना महिमामंडित कैसे हो सकता था यदि इसमें साधारण एकता का गुण न होता? प्रकृति का नियम यह है कि एकता ही उन्नति का मुख्य कारण होती है और अलगाव में जाति का नाश होता है।

इसके अतिरिक्त मन ही एकता का आधार है, जो सब विचारों का मूल स्थान है। जिस मन में संयम नहीं है वह कामना और लोभ से भरा हुआ है, उस मन में एकता की धारणा कैसे आ सकती है? एकता का यदि सही रूप देखना है तो हम उसे अनुभूति में तथा व्यवहार में देखें। एकता रूपी इच्छा शक्ति का बाह्य प्रकाश ही एकता है। जिस सभ्यता में एकता के मूल भाव (एकमेवाद्वितीयम्) की अनुभूति हुई थी, उस सभ्यता या समाज में एकता का अभाव था, यह विश्वास योग्य नहीं है। भारत में एकता संघ-शक्ति, एकात्मकता आदि सब गुण विद्यमान थे, केवल हिंदू एकता की धारणा तथा उसका प्रकाश दूसरे देशों की तुलना में विभिन्न था।

अब भी भारत के अंदर इस एकता का भाव विद्यमान है। और इसी हिंदू एकता के सूत्र ने भारत को बांध रखा है। समय के प्रभाव से यह एकता धार्मिक आडंबर, कुसंस्कार तथा अज्ञान से ढक गयी है। भारत की एकता लंबी बीमारी से दुर्बल मनुष्य के हृदय की धड़कन के समान शेष है।

हिंदू सभ्यता का स्वरूप :

हिंदू सभ्यता का स्वरूप क्या है, प्रेरणा कहाँ से आ रही है, मूल सूत्र कहाँ है—इन सब के विषय में हमको जानना और समझना चाहिए। पश्चिम की राजनीतिक सभ्यता मुस्लिम देशों की धार्मिक सभ्यता और वर्तमान युग की व्यापारिक सभ्यता आदि के साथ यदि हिंदू सभ्यता की तुलना की जाय तो यह बड़ी भूल होगी। हिंदू सभ्यता इन सब प्रकार की सभ्यताओं से भिन्न है। हिंदू सभ्यता का अपना एक विशेष अर्थ है।

सृष्टि के आरंभ से ही वैज्ञानिक सत्य विद्यमान थे, जैसा कि चुम्बकीय आकर्षण का नियम। न्यूटन इस वैज्ञानिक सत्य के आविष्कारक थे। उनसे पहले मनुष्य इस सत्य को नहीं जानता था। वैसे ही मनुष्य और विश्व के स्वरूप के विषय में सत्य चिरकाल से विद्यमान था, जिसका ज्ञान प्रत्येक मनुष्य के लिए अनिवार्य है। वैदिक ऋषियों ने तपस्या करके इस सत्य का आविष्कार किया था। केवल यह आविष्कार नही था अपितु, 'यह सत्य उनके सामने प्रकट हुआ था। उन्होंने इस सत्य को मनुष्यों की भाषा में लिखा और वही वेद तथा उपनिषद् हैं। इसलिए वेद ईश्वरीय ज्ञान का और मानव धर्म का भाण्डार है। यह ज्ञान अनादि, अनंत और सब मनुष्यों के लिए है, केवल किसी देश व जाति-विशेष के लिए नहीं। यह ज्ञान मनुष्य को असत्य से सत्य की ओर ले जाता है, अंधकार से ज्योति की ओर तथा मृत्यु से अमृत की ओर ले जाता है। जो अपरिणामी आनंदमय तथा सर्वशक्ति का आधार है, जहाँ अनंत जीवन तथा पूर्णता विराजमान है एवं जिनके पास जाने से सब दुःखों का अंत होता है 'उनके तत्त्वों को जानना ही ज्ञान है। इस ज्ञान-राशि को मनु महाराज ने 'धर्मकोष' का नाम दिया है। यह ज्ञान-राशि हिंदुओं के लिए जातीय कोषागार है। प्रत्येक हिंदू के लिए यह गर्व की वस्तु है और यह अमूल्य आध्यात्मिक उत्तराधिकार है।

हिंदू सभ्यता की विशेषता यह है कि इसमें आरंभ से ही समाज, राजनीति, अर्थनीति, शिल्प, कला, साहित्य आदि सब का केंद्र आध्यात्मिकता है। धर्म आध्यात्मिकता का व्यावहारिक रूप है। जो संबंध वैज्ञानिक सत्य का तकनीकी ज्ञान से है, वही संबंध आध्यात्मिकता का धर्म से है। स्वामी विवेकानंद कहते हैं, 'अन्यान्य राष्ट्रों के लिए धर्म, संसार के अनेक कृत्यों में एक धंधा मात्र है। वहाँ राजनीति है, सामाजिक जीवन की सुख सुविधायें हैं। धन तथा प्रभुत्व द्वारा जो कुछ प्राप्त हो सकता है और इंद्रियों को जिससे सुख मिलता है उन सब के पाने की चेष्टा भी है। इन सब विभिन्न जीवन व्यापारों के भीतर तथा भोग से निस्तेज हुई इंद्रियों को पुनः उत्तेजित करने के लिए उपकरणों की समस्त खोज के साथ, वहाँ संभवतः थोड़ा-बहुत धर्म-कर्म भी है। परंतु यहाँ भारतवर्ष में मनुष्य की सारी चेष्टाएँ धर्म के लिए हैं। धर्म ही जीवन का एकमात्र उपाय है।"
(विवेकानंद साहित्य : पंचम खण्ड, पृष्ठ 7)

धर्म तथा आध्यात्मिकता भारत के प्राण स्वरूप हैं। भारत में कितने ही उत्थान पतन हुए हैं, परंतु इस भारत ने कभी धर्म तथा आध्यात्मिकता को नहीं छोड़ा। जब-जब धर्म के प्रति ग्लानि हुई है, तब-तब इस पुण्य भूमि भारत में हिंदू धर्म की रक्षा तथा उसमें शक्ति-संचार करने के लिए ईश्वरीय पुरुष का आविर्भाव हुआ है। हिंदू का आदर्श, प्राण-शक्ति तथा मिशन सब ही धर्म तथा आध्यात्मिकता पर आधारित हैं। स्वामी विवेकानंद ने कहा है कि धर्म ही भारत का मेरुदण्ड है। हिंदुओं के लिए भारत केवल एक भौगोलिक भूखण्ड नहीं है। श्री अरविंद के शब्दों में : "भारत शक्ति है, भारत आध्यात्मिकता की जीवंत प्रतिमूर्ति है।" हिंदुओं के लिए भारत पुण्य भूमि है, भारत का प्रत्येक धूलि-कण पवित्र है। "यहीं सबसे पहले मनुष्य, प्रकृति तथा अंतर्जगत् के रहस्योद्घाटन की जिज्ञासाओं के अंकुर उगे थे।" [विवेकानन्द सा० ५, २७९]

उसके लिए "भारत माँ है; 'वंदे मातरम्' इस देश मात्र का मंत्र है। कितने ही हिंदू वीर इस मातृभूमि की पूजा करके धन्य हुए थे। भारत के लिए हिंदुत्व तथा हिंदुत्व के लिए भारत इन दोनों का अकाट्य संबंध है। हिंदू विहीन भारत भारत नहीं है। भारतीय-संस्कृति-त्यागी हिंदू हिंदू नहीं है।

हिंदू सभ्यता का मुख्य उद्देश्य इस सनातन धर्म का संस्थापन करना, संरक्षण करना और विश्व में बिस्तार करना है, ताकि विश्व का प्रत्येक मनुष्य इस मानव धर्म के साथ परिचित होकर अपने जीवन में परम शांति का लाभ कर सके। प्रत्येक हिंदू के लिए यह धर्म अति मूल्यवान है। तभी तो मनु महाराज ने इसे 'धर्मकोष' नाम दिया। जब भी इस सनातन धर्म पर विपत्ति आयी, तभी हिंदू जाति की आध्यात्मिक शक्ति एकत्रित होकर उसकी रक्षा के लिए [illegible] हो गयी।

रामायण, महाभारत और पुराण की कहानियों से यह ज्ञात होता है कि हिंदू सभ्यता की साधना ब्रह्म तेज और क्षात्र वीर्य का अपूर्व सम्मिश्रण है। कुंती ने कुरुक्षेत्र युद्ध के आरंभ में अपने ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर को ये बातें कही थीं; "तुम तप: परायण हो, यज्ञ-दान आदि करो, यह आशीर्वाद मैं दे चुकी हूँ और यह भी साथ कहती हूँ कि बलवान बनो और तेजस्वी बनो।" यदि हिंदू धर्म को नाश करनेवाली शक्ति आमने-सामने आ जाए, तो हिंदू इन्द्र के समान वज्र लेकर खड़ा हो जाता है; और यदि शांति प्रिय देव शक्ति इसके सामने आ जाए तो हिंदू प्रेम से अपना हाथ बढ़ाता है।

हिंदुओं का दृढ़ विश्वास है कि आसुरी शक्ति या भौतिक शक्ति आरंभ में क्षणिक जय लाभ करती है परंतु अंत में समाप्त हो जाती है। इसलिए उपनिषदों का कथन है: 'सत्यमेव जयते नानृतम्', महाभारत कहता है 'यतो धर्मस्ततो जयः।"

आसुरी शक्ति की एकता :

मानव समाज में एक और ही प्रकार की एकता दिखाई पड़ती है। उसके अंदर एक साधारण स्वार्थ दिखाई पड़ता है। वह स्वार्थ भौतिक लाभ पड़ खड़ा है। उसमें अहंकार निष्ठुरता, लोभ और स्वार्थ की खोज ये सब दोष दिखाई पड़ते हैं। वह भौतिकवादी और भोगवादी होता है। वह मानवता पर शेर की भांति ऊपर से झपटता है। परिणाम यह होता है कि मानवता का जो अंश उनके संपर्क में आता है, उसकी हानि होती है। रामायण में राक्षसों की एकता, महाभारत में कौरवों की एकता, चण्डी में असुरों की एकता, ये सब आसुरी शक्ति की एकता के उदाहरण हैं। राजनैतिक क्षेत्र में इस प्रकार को हम देखते हैं यूरोपीय समाजवादी देशों में, जिन्होंने राष्ट्रीयता का ऊँचा नाम लेकर मानवता को बहुत हानि पहुँचाई। मध्य युग में यह आसुरी शक्ति मुस्लिम आक्रमणकारियों में दिखाई पड़ती है। वर्तमान युग में धनिक पूँजीपतियों में तथा बुर्जुआ वर्ग में दिखाई पड़ती है।

हिंदू सभ्यता आसुरी शक्ति से युद्ध की घोषणा करती है। हमारा युद्ध बैंड-बाजे बजाकर, तोप गोले और हजारों बम फेंककर नहीं होता, बल्कि हमारा युद्ध शांत आदर्शों के प्रचार का युद्ध है जिनके द्वारा आसुरी शक्तियाँ नष्ट होती हैं, और अपरिमेय शक्ति तथा दृढ़ संकल्प का जन्म होता है। हमें यह याद रखना चाहिए कि हिंदू जाति ने कभी अपने इतिहास में आसुरी शक्ति द्वारा धन संपत्ति का लाभ करने तथा राज्य विस्तार के लिए युद्ध नहीं किया। इसके इतिहास में हम संस्कृति की विजय देखते हैं जिसका एकमात्र उद्देश्य मनुष्य जातियों में शांति स्थापित करना तथा सांत्वना प्रदान करना है।

हिंदू संगठन के उपाय :

बहुत समय में भारत पराधीन रहा, सदियों से ऊँची जातियों, राजाओं और विदेशियों ने हमारे ऊपर अत्याचार करके हमको चकनाचूर कर डाला है। और विशेष रूप से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद धर्म निरपेक्ष तथा भौतिकवादी शिक्षा के कारण हिंदू एकता का वास्तविक अर्थ हम भूल गये हैं। तथापि हिंदू हिंदू ही है। वह अपना आचार-विचार, पूजा पद्धति सभी आचरण करता

है परंतु इसका अर्थ वह शायद नहीं जानता। इसी कारण उसका झुकाव कुसंस्कार; लौकिकता तथा धर्म के विकृत रूप की तरफ है।

हिंदू के मन में आजकल दो सुझाव दिखाई पड़ते हैं—एक, धर्म का मुख्य अंश ईश्वरीय उपलब्धि है, उसकी ओर न जाकर केवल बाह्य आचरण को धर्म-ज्ञान कहना तथा दूसरा, पश्चिम के भौतिवाद की चमक देखकर उसकी नकल करना। परिणाम यह निकला कि न वह पूर्ण रूप से हिंदू है, न वह पूर्ण रूप से पश्चिमी। आज वह हिंदू सभ्यता का अर्थ समझने में असमर्थ है। इसी कारण उसके जीवन में एक अपरिमित निराशा छायी हुई है। पश्चिमी शिक्षा प्राप्त हिंदू आज हिंदू सभ्यता का ठीक अर्थ न समझने के कारण राष्ट्रीय एकता को पश्चिमी ढंग से समझना चाहता है।

आधुनिक युग में प्रत्येक हिंदू का प्रयोजन :

१. हिंदू धर्म का वास्तविक अर्थ समझना तथा धर्म विश्वास की पुनः जागृति।

२. मातृभूमि भारतवर्ष से प्रेम करने की शिक्षा लेना।

३. हिंदू संगठन—चण्डी की महिषासुर-वध कहानी के भाव अवलंबन से।

हिंदू संगठन का रास्ता क्या है? हमने यह देखा है कि भाई-भाई का प्रेम उनके माता-पिता के प्रति प्रेम के कारण होता है। यह भी देखा गया है कि दो शिष्यों का परस्पर प्रेम गुरु के प्रति एकनिष्ठ प्रेम के कारण होता है। वैसे ही हिंदू एकता तभी संभव हो सकती है जब प्रत्येक हिंदू के मन में हिंदू धर्म और मातृभूमि के प्रति प्रेम हो। प्रेम ही मनुष्य जीवन में रूपांतर लाता है। प्रेम ही सकल शक्ति व एकता का मूल है। शेर के सामने जब शिशु खतरे में होता है, माँ तुरन्त आकर उस शिशु को बचाती है। क्यों? कारण माँ को शिशु से प्रेम है। इस शताब्दी के पूर्वार्ध में जितने स्वतंत्रता सेनानियों ने विदेशी सरकार से युद्ध किया, फाँसी पर हँसते-हँसते चढ़े, इसका मुख्य कारण उनका देश प्रेम ही है। प्रेम की अपार शक्ति के विषय में स्वामी विवेकानंद की कथा याद आती है। उन्होंने कहा है : "मैंने सुन रखा था कि जापानी लड़कियों का यह विश्वास है कि यदि गुड़िया से गहरा प्रेम किया जाए तो उसमें भी जान आ जाती है। जापानी लड़कियाँ अपनी गुड़ियों को टूटने नहीं देतीं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि यदि इन हतश्री, विगतभाग्य, लुप्तबुद्धि, परपददलित, चिर बुभुक्षित कलहशील और परधर्म-कातर भारतवासियों से भी हार्दिक प्रेम किया जाए तो भारत भी पुनर्जीवन लाभ करेगा।"

इस युग में मनुष्यों में किस प्रकार प्रेम का विकास किया जाए? मुख्य उपाय :—आज सभी बालक-बालिकाएँ अपनी माँ के मुख से बचपन से ही सनातन धर्म की महिमा तथा देश भक्ति की बातें सुनें। वे सुनें आर्य ऋषियों के त्याग के बारे में, वे सुनें श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध, शंकर, चैतन्य, श्रीरामकृष्ण की धर्म स्थापन की बातें, वे सुनें इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में लिखी गयी महाराणा प्रताप, गुरु गोविंद सिंह, शिवाजी, स्वामी विवेकानन्द, नेताजी सुभाष चन्द्र की तेज-वीर्य की वाणी। इसके परिणाम बहुत ही अच्छे निकलेंगे। पुराणों में रानी मदालसा की कहानी है, वह अपने शिशु को झूले में जब हिलाती थी तो यह गाना गाती थी "त्वमसि निरंजन - तुम ही वह पवित्र आत्मा हो।" "तुम ही मेरे लाल/निरंजन अतिपावन निष्पाप/ तुम हो सर्वशक्तिशाली/तेरा है अमित प्रताप।" प्रत्येक शिशु जब बड़ा होता था तब वह संन्यासी बनता था। इसी प्रकार ये बच्चे भी जब बड़े होंगे तब उनमें स्वयमेव ही अपने धर्म, शास्त्र और देश के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होगी। यही श्रद्धा सूक्ष्म रूप से उनके मनों में कार्यरत होगी, जिससे हिन्दुओं में हिन्दुत्व तथा आत्मगौरवबोध जगेगा।

इसके अतिरिक्त इस धर्मनिरपेक्ष राज्य के स्कूलों, कालेजों में हिन्दू धर्म के मूलभूत तत्वों की शिक्षा दिये जाने की आवश्यकता है। और साथ-ही-साथ हिन्दू जाति की प्राण, संस्कृत भाषा, प्रत्येक हिन्दू सन्तान को सिखायी जाय। इसके लिए एक जातीय आन्दोलन होना आवश्यक

हैं। स्वामी विवेकानन्द का कहना है कि संस्कृत शब्दों का उच्चारण ही एक जातीय गौरव और शक्ति का आभास करा देता है।

आधुनिक युग में हिन्दू एकता की अनिवार्यता तेजी से अनुभव की जा रही है। मंदिर के विग्रह के माध्यम से हम आध्यात्मिक तत्व की उपलब्धि हेतु श्रद्धापूर्वक उपासना करते हैं। हिन्दू संगठन का कार्य भी उतनी ही श्रद्धा से, व्यष्टि और समष्टि के स्तरों पर सपन्न करना चाहिए। क्यों? क्या हिन्दू एकता भी इसी परम ऐक्य ब्रह्म की प्रतीक नहीं, जिसे वैदिक ऋषि ने 'एकमेवाद्वितीयम्' कहा है? इस संक्राति काल में हम सब वैदिक ऋषि की इस ऐक्य वाणी का श्रवण करें और इसे अपने जीवन में श्रद्धापूर्वक निभाने का संकल्प लें।

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवाभागम् यथापूर्वे संजानाना उपासते ॥

— तुम सब लोग एक मन हो जाओ, सब लोग एक ही विचार के हो जाओ, क्योंकि प्राचीनकाल में एकमन होने के कारण ही देवताओं ने बलि पायी है।

— तुम्हारे संकल्प समान हों, तुम्हारे हृदय समान हों, तुम्हारे अन्तःकरण समान हों, जिससे तुम्हारे मध्य परम ऐक्य स्थापित हो, वैसा ही हो।

निवेदन

'विवेक शिखा' का जून-जुलाई अंक रामकृष्ण मिशन एवं मठ के दसवें महाध्यक्ष श्रीमत स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज की स्मृति में सर्मपित एक विशिष्ट संयुक्तांक होगा। इसमें उनके संबंध में संस्मरण, उनके कुछ प्रमुख प्रवचन एवं उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के उद्‌घाटन का विनम्र प्रयास किया जायगा।

श्री राककृष्ण मिशन के श्रद्धेय स्वामी जी महाराजों तथा श्रीमत स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज के गृही शिष्यों एवं भक्तों से अनुरोध है कि वे उनके सम्बन्ध में अपनी रचनाएँ २० जून तक भेजने की कृपा कर अनुगृहीत करें।

विवेक शिखा का यह विशिष्ट अंक सर्वथा पठनीय एवं रक्षणीय होगा। इस अंक का मूल्य होगा ५ रुपये मात्र। जो विवेक शिखा के ग्राहक नहीं हैं उनसे आग्रह है कि अग्रिम मूल्य भेजकर वे अपनी प्रति सुरक्षित करवा लेने की कृपा करें।

निवेदक—
सम्पादक,
विवेक शिखा

स्वामी प्रेमानन्दजी के संस्पर्श में

—स्वामी ओंकारेश्वरानन्द
अनुवादक—ब्रह्मचारी सत्यचैतन्य
रामकृष्ण मठ, नागपुर

बंगाल में महावीर हनुमानजी की पूजा का प्रचलन

(१)

पवित्रता ही प्रार्थनीय है :

आज शुक्रवार, ३ दिसम्बर १९१५ ई० -- कृष्ण-पक्ष की एकादशी का दिन है। मठ के अतिथि-कक्ष में सन्ध्या के बाद महावीर हनुमानजी की पूजा, आरती तथा रामनाम-संकीर्तन होगा। दोपहर से उसी की तैयारी चल रही है। दिनमणि अस्त हुए। श्रीरामकृष्णदेव की आरती आरंभ हुई। तत्पश्चात् स्तवपाठ होने लगा। भक्तजनों का चित्त आह्लादित करता हुआ यह मधुर संगीत धीरे-धीरे नीलाकाश में विलीन हो गया। साष्टांग प्रणाम करने के बाद भक्तों ने चरणामृत का सेवन किया।

शाम के करीब सात बजे होंगे। हनुमानजी की पूजा, भोग तथा आरती समाप्त हुई। अब मधुर रामनाम-संकीर्तन आरंभ होने जा रहा है। भावी भारतवर्ष के आशाकेन्द्र युवक और युवतियों में संयम और ब्रह्मचर्य की पुनः प्रतिष्ठा हो सके अतः युगाचार्य विवेकानन्दजी की यह आन्तरिक इच्छा थी कि बंगाल में ब्रह्मचर्य-मूर्ति हनुमानजी की उपासना का प्रवर्तन हो। तदनुसार पूज्यवाद स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने मठ में और बंगाल में अन्य स्थानों पर भी श्रीहनुमानजी की पूजा तथा रामनाम-संकीर्तन की प्रथा आरम्भ की। महा-तपस्विनी अंजनी के पुत्र हनुमान का चरित्र वास्तव में एक आदर्श चरित्र है।

रामनाम-संकीर्तन आरम्भ हुआ। रामगतप्राण, दास्यभक्ति के चरम आदर्श, इष्टनिष्ठ, पवनपुत्र हनुमान मस्तक नबाये हुए परम व्याकुलता के साथ अश्रुपूर्ण नेत्रों एवं रूद्ध कण्ठ में गद्‌गद् होकर रघुपति के चरणों में प्रार्थना कर रहे हैं—

'नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥

-- हे रघुकुलतिलक, मैं सत्य कहता हूँ, मेरे हृदय में और कोई भी इच्छा नहीं है; आप तो सबके अन्तरात्मा हैं—मुझे केवल अपने चरणों में शुद्धभक्ति दीजिए और मेरा अन्तःकरण कामादि दोषों से मुक्त कीजिए।

हनुमानजी के हृदय-से-हृदय-मिलाकर मठ के शुद्धसत्त्व साधु और भक्तों ने भी यह प्रार्थना की और तत्पश्चात् एक सौ आठ श्लोकों में संपूर्ण रामचरित का गायन होने लगा। महावीरजी के भाव से ओत-प्रोत भक्तिमान साधु और भक्तों द्वारा गाये गये इस संकीर्तन ने सब का मन आकृष्ट कर दिया। मानो हनुमानजी भी यहाँ साक्षात् आविर्भूत हुए हैं।

बाबूराम महाराज हनुमानजी के चरणों के निकट बैठे संकीर्तन सुन रहे हैं—बीच-बीच में भावाविष्ट हो रहे हैं। अन्त में, बारम्बार गायी जानेवाली 'राम राम जय राजा राम, राम राम जय सीताराम' यह नामावली सुनते-सुनते महाराज के पवित्र देवशरीर पर अश्रु, रोमांच इत्यादि भाव के सब लक्षण प्रकट होने लगे। संकीर्तन समाप्त होते ही सभी ने हनुमानजी और बाबूराम महाराज को प्रणाम किया। बाबूराम महाराज ने भी महावीर हनुमान को प्रणाम किया।

स्वामी प्रेमानंदजी का वचनामृत पान करने की आशा में साधु तथा भक्तगण उनकी ओर आखें लगाकर बैठे हैं। ठाकुर को प्रणाम कर बाबूराम महाराज बोलने लगे—

'ठाकुर जैसा पवित्र मानव संसार में आजतक पैदा नहीं हुआ। वे समाधि-अवस्था में अपवित्र लोगों का स्पर्श सहन न कर पाते थे। कोई यदि छूता तो आऽऽकर चिल्ला उठते। पवित्रता ही धर्म है, पवित्रता ही शक्ति है। वे पावित्र्य-घनमूर्ति थे।

पवित्रता का मन्त्र :

तुम सब उनका आदर्श अपने सामने रखकर मन को पवित्र कर लो। जब भी कभी काम-कांचन, द्वेष, हिंसा, स्वार्थपरता ये मन में घुसने का प्रयास करेंगे तब तुरन्त ठाकुर-स्वामीजी का स्मरण कर पूरी दृढ़ता के साथ इस अपवित्रता को दूर भगा दो। और बीच बीच में पवित्रता के इन मन्त्रों को दुहराते रहो :

'हे प्रभु, मेरी त्वचा, चर्म, मांस, रक्त, मेद, मज्जा, स्नायु तथा समस्त अस्थियाँ शुद्ध हो जायँ पवित्र हो जायँ, ताकि आत्मस्वरूप मैं रजःशून्य तथा निष्पाप बन पाऊँ। मेरे मस्तक, हाथ, पैर, पार्श्व, पृष्ठ, उदर, जांघ, शिश्न, पायु, उपस्थ शुद्ध हो जायँ, पवित्र हो जायँ ताकि आत्मस्वरूप मैं रजः शून्य तथा निष्पाप बन पाऊँ। मेरे वाक्य, मन, नेत्र, कर्ण, जिह्वा नासिका, बुद्धि, संकल्प प्रभृति सब शुद्ध हो जायँ, पवित्र हो जायें ताकि आत्मस्वरूप मैं रजःशून्य और निष्पाप बन पाऊँ। ..'

सभी निःशब्द, निःस्पन्द, ध्यानस्थ बैठे हैं। त्याग और पवित्रता के ये महान् मन्त्र बाबूराम महाराज के श्रीमुख से सुनते-सुनते सभी का मन जिस उच्च, अज्ञात, पवित्रतामय स्वर्गीय भावराज्य में पहुँच गया है, शब्द उसका वर्णन नहीं कर सकते। यह तो केवल मुख से दिया गया उपदेश नहीं है – यह है आध्यात्मिक भाव-संचार। जो भी कोई सुनता, उसीका मन तीन-चार सीढ़ियाँ ऊपर उठ जाता था।

कुछ क्षण निःशब्द रहकर महाराज कहने लगे, 'तुम सब पवित्र बन जाओ। द्वेष, हिंसा, स्वार्थपरता इन्हें झाड़ू मारकर मन से बाहर करो। मन के द्वार पर सदा ज्ञानरूपी पहरेदार को बिठाओ—सावधान ! अपवित्रता मन में प्रविष्ट होने न पाये। भगवद्-प्राप्ति के मार्ग में ये ही कांटे हैं।

'तपस्या और वैराग्य के अग्निकुण्ड में मन को दग्ध कर दो, नष्ट कर दो। इस प्रकार जीवन को गढ़कर दिखाओ तो सही ! तभी भगवान की कृपा, उनकी सत्ता अनुभव कर सकोगे। और तब दीख पड़ेगा कि तुम्हारे तथा प्रत्येक जीव के भीतर वे ही एकमेवाद्वितीय अनन्त शक्तिमान्, आनन्दमय भगवान विराजमान हैं। मैं स्वयं यह खूब देख रहा हूँ। किन्तु हाय ! जीव कैसा अन्धा, कैसा नासमझ है जो उसकी ओर न देख अपनी गिद्ध-दृष्टि तुच्छ काम-कांचन पर ही लगाये रखता है।

'जब साधु बनने के लिए आये हो तो स्वार्थ को, अहं को बलि दो। तभी तो ठीक ठीक साधु बन पाओगे। साधु है जगद्गुरु ! जो सचमुच भक्तिमान् साधु हैं, वे भगवान के सचल विग्रह ही हैं—भागवत् में यह बात है। ठाकुर कहा करते थे—"मैं मरा तो झंझट गयी"। नाहं, नाहं, नाहं— तूँहूँ, तूँहूँ, तूँहूँ।'

यह कहते-कहते वे धीरे-धीरे भावमग्न हो गए और ताली बजाते हुए, 'जय प्रभु, जय प्रभु; नाहं, नाहं, नाहं – तूँहूँ, तूँहूँ, तूँहूँ' इस मन्त्र को आँखें मूंदकर बार-बार दुहराने लगे।

फिर कहने लगे, 'चित्तशुद्धि की तरफ ध्यान न देकर केवल भाषण झाड़ने से क्या धर्म होता है ? उससे तो फिर अहंकार बढ़ा हम धर्म मार्ग पर पिछड़ जाते हैं। खोखली बातों से क्या होगा ? "नैषा तर्केण मतिरापनेया।" धर्म के बारे में वक्तृता को कई लोग देते हैं और पुस्तकों में भी लिखते हैं—किन्तु उसे ग्रहण कितने लोग करते हैं ? प्राणों के भीतर से यदि नहीं आये तो क्या कोई उसे ग्रहण करता है ?

'जीवन के माध्यम से प्रकट करो तब कहीं लोग तुम्हारी बातें सुनेंगे। मैं जीवन चाहता हूँ—ज्वलन्त जीवन। तुम्हारा मुख बन्द रहे, कार्य बातें कहे। बातें न कर कार्य कर दिखाओ।' तुम सन्तान किसकी हो? माँ ब्रह्ममयी के बेटे हो तुम—ठाकुर-स्वामीजी के सपूत हो तुम—पार्थिव नाम-यश तुम्हारे लिए थूक के समान त्याज्य हो। लोग अच्छा कहते हैं या बुरा इस ओर नजर न देकर अपने हृदय-मन को पवित्र करके उसमें श्रीमाँ और ठाकुर को प्रतिष्ठित करो तथा उनके यन्त्रस्वरूप होकर, शान्तिपूर्वक मन-मुख एक करके कार्य करते रहो। यह मठ हो-हल्ला मचाने की जगह नहीं है, यथार्थ मनुष्य का निर्माण करने के लिए ही स्वामीजी ने इसे बनाया है। धर्महीन, चरित्रहीन पुस्तकीय विद्या से मनुष्य निर्माण नहीं हुआ करता। यहाँ से शिक्षा पाकर जो उत्तीर्ण हो पाएँगे वे ही इस संसार में चरित्रवान् आदर्श पुरुष होंगे।

'धन से कुछ होने का नहीं; चरित्र और प्रेम के द्वारा ही सब हुआ करता है। ठाकुर ने जब देह त्याग किया तो हमलोंगों के लिए वे क्या छोड़ गये थे? कुछ भी तो नहीं—एक तरह से सिर्फ कुछ छोकरों को पेड़ों के नीचे छोड़ गये थे। उस समय क्या स्वामीजी उन्हें अवतार कहकर उनका प्रचार नहीं कर पाते? किन्तु उन्होंने कहा, "भाषणों द्वारा नहीं बल्कि अपने जीवन द्वारा सिद्ध करना होगा कि वे अवतार हैं या नहीं।" उनके भाव के अनुरूप जीवन-गठन न कर केवल मुख से "अवतार, अवतार" चिल्लाने से क्या लाभ?

'हर अवतार ही पूर्ण होकर आते हैं। जिस युग की जैसी आवश्यकता होती है, वैसे ही उन्हें प्रचार करना होता है। असली, शुद्ध सोने का गहना नहीं गढ़ा जा सकता। इसीलिए ठाकुर स्वयं प्रचार नहीं कर पाये। स्वामीजी को बहुत उच्च आधार जानकर, उन्हें शिक्षा देकर वे इस प्रचार का जिम्मा उनपर छोड़ गये। वे हमारी देखभाल की जिम्मेदारी रामलाल दादा* पर थोड़े ही छोड़ गये थे!

'वे नरेन्द्र से इतना अधिक प्यार करते थे कि कई लोग ठाकुर को कहा करते—आप भी आखिर में "नरेन, नरेन" ऐसा चिन्तन करते-करते जड़भरत* के समान वही बन जाएँगे। ठाकुर ने उन्हें जवाब दिया, "क्या मैं जड़ नरेन्द्र का चिन्तन करता हूँ कि वह अमुक का पुत्र है, अमुक जगह रहता है, अच्छा पढ़ा-लिखा और बुद्धिमान् है, गाना-बजाना जानता है इत्यादि? माँ ने मुझे दिखा दिया है कि वह साक्षात् शिव है, जीवों की शिक्षा के हेतु स्थूल देह धारण कर आया है। उसके चिन्तन से लाखों साधुओं को भोजन कराने का पुण्य मिलता है।"

---

*श्रीरामकृष्ण के भतीजे रामलाल चटर्जी। श्रीरामकृष्ण का लौकिक उत्तराधिकार—जैसे कि काली-मन्दिर का पूजकपद, जायदाद का हिस्सा इत्यादि तो उन्हें प्राप्त हुआ, किन्तु उनका आध्यात्मिक उत्तराधिकार उनके सर्वश्रेष्ठ शिष्य नरेन्द्रनाथ या स्वामी विवेकानन्द को ही प्राप्त हुआ था।

* भरत, वह एक अत्यंन्त पुण्यशील राजा थे। अपनी ढलती उम्र में सर्वस्व-त्यागकर वनवास और ईश्वर-चिन्तन में काल व्यतीत करने लगे। इसके फलस्वरूप धीरे-धीरे उनका मन शुद्ध और भगवद् शक्ति से परिपूर्ण हो गया। एक दिन उनके सम्मुख नदी के किनारे बैठी एक गर्भवती हिरनी ने अचानक शेर की गर्जना सुनकर भय से लम्बी छलाँग लगायी और एक हरिण-शावक को जन्म देने के बाद उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। इस अनाथ हरिण-शावक को देख भरत के मन में करुणा उत्पन्न हुई। वे उसे उठाकर अपने आश्रम में ले आये और उसे बड़े प्रेम के साथ पालने लगे। कालान्तर में वे उसपर इतने आसक्त हुए कि उनका भगवच्चिन्तन घटता गया। मृत्यु के समय भी उस हरिण-शावक का चिन्तन न छोड़ सकने के फलस्वरूप उनका अगला जन्म हिरण का हुआ था।

—२—

'ठाकुर यद्यपि हम लोगों को चैतन्य-चरितामृत, चैतन्य-चन्द्रोदय आदि ग्रन्थ पढ़ने के लिए खूब उत्साहित किया करते थे पर बीच-बीच में वे कहते कि वह सब एकांगी है।

'ठाकुर को यदि न देखता तो क्या रासलीला का मर्म समझ पाता? उन लंपटताभरी बातों को मैं "तेजीयसां न दोषाय"—दिव्य व्यक्तियों के लिए वे दोषप्रद नहीं हैं—इसी भाव से देखा करता। भाग्यवश अच्छा हुआ कि उनकी कृपा प्राप्त हुई और इसी कारण वह सब भली भांति-समझ पा रहा हूँ। जो पूर्णत: पवित्र हैं, केवल वे ही यह सब सुनने के अधिकारी हैं। अपवित्र व्यक्तियों के सुनने से उन्हें क्षति पहुँचती है।

ठाकुर की पवित्रता की बात जानते हो न? देखा है कि उनके अनजाने में उनके बिछौने के नीचे रुपया रख देने पर वे उसपर बैठ नहीं पाते। फिर गलत व्यक्ति के हाथों से अफीम ले लेने के कारण रास्ता भूलने की वह बात याद आती है।*

'आजतक जितने भी अवतार हुए हैं उनमें मुझे तो लगता हैं कि ठाकुर ही सर्वश्रेष्ठ हैं—इसे तुम संकीर्णता कहो या चाहे जो कहो। उन सबको तो मैंने आँखों से देखा नहीं है केवल पुस्तकों में पढ़ा भर है। जिन्हें प्रत्यक्ष देखा है, जिनके साथ निवास किया है उनका भाव जैसा हृदय को विद्ध करता है वैसा क्या किताबों को पढ़ने मात्र से हो सकेगा? मैं किसी की भी निन्दा नहीं कर रहा हूँ—वे सभी तो मेरे पूजनीय हैं, मेरे शिरोमणि हैं।

'श्रीचैतन्य महाप्रभु की थी मानो एकांगी भक्ति, शंकराचार्य का वैसा ही ज्ञान और बुद्धदेव का था वैसा ही हृदय। किन्तु भाई, इस बार ठाकुर में वैसा नहीं है! एक ही आधार में ज्ञान-भक्ति-प्रेम सब हैं;—"जितने मत उतने पथ।" किन्तु ज्ञान के वास्तविक अधिकारी बहुत कम होने के कारण वचनामृत* में भक्ति की ही बातें अधिक हैं।

---

* एक दिन भक्त श्री शम्भुचन्द्र मल्लिक ने ठाकुर को उनके पेट की बीमारी के लिये दवा के रूप में अपने पास से थोड़ी-सी अफीम ले जाने के लिये कहा था। बातचीत के दौरान दोनों ही इस बात को भूल गये। फिर रात बहुत हुई देखकर ठाकुर अपने कमरे की तरफ चल पड़े। परन्तु कुछ ही क्षणों बाद उन्हें स्मरण हुआ कि वे शम्भु बाबू से अफीम लेना भूल गये हैं। तुरन्त वापस लौटकर उन्होंने देखा कि शम्भु बाबू घर के भीतर चले गये हैं और वहाँ दवाखाने में उनका सेवक ही मौजूद है। उसीसे अफीम लेकर श्रीरामकृष्ण फिर अपने कमरे की ओर चले। किन्तु अब वे रास्ता नहीं देख पा रहे थे—रास्ते के पास जो नाला था उसी ओर मानो कोई उन्हें जबरन खींचे ले जा रहा था। कुछ भूल हुई है, यह सोचकर ठाकुर फिर शम्भु बाबू के मकान की तरफ लौटे और पुन: सावधानीपूर्वक अपने कमरे की ओर निकले। लेकिन फिर वही बात—सामने का रास्ता ही नहीं दिखायी दे रहा था। ऐसा जब कई बार हुआ तब सहसा उन्हें याद आयी कि ओह! शम्भु ने तो कहा था कि मुझसे अफीम ले जाइएगा और वैसा न कर मैं बिना उसकी इजाजत लिए वह उसके नौकर से ले आया! इसमें तो मुझसे चोरी और असत्य भाषण ये दोनों अपराध हो रहे हैं; और इसीलिए माँ मुझे आगे नहीं बढ़ने दे रही है। तुरन्त वे शम्भु बाबू के मकान पर जा पहुँचे। देखा कि वह नौकर भी अब चला गया है। तब बाहर से वह अफीम की पुड़िया उन्होंने भीतर फेंक दी और जोर से कहा—यह रही तुम्हारी अफीम। इसके उपरान्त कहीं वे ठीक रास्ता देख पाये और अपने कमरे में लौट आये। इस प्रसंग को लेकर ठाकुर कहा करते कि जिसने माँ के ऊपर अपना सम्पूर्ण भार सौंपा है उसके कदम माँ कभी गलत नहीं पड़ने देतीं।

* 'श्रीरामकृष्ण-वचनामृत'-नामक ग्रन्थ जो श्री महेन्द्रनाथ गुप्त (श्री 'म') द्वारा मूल बंगला में संकलित, पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा अनुवादित तथा रामकृष्ण मठ, नागपुर द्वारा तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ है।

'सभी धर्मों के, सभी सम्प्रदायों के लोगों से वे कहते,—आगे बढ़ो, आगे बढ़ो,—पहले चन्दन का वन मिलेगा, उसके बाद तांबे की खान, फिर चाँदी की; तत्पश्चात् सोने की तथा फिर हीरे की खान मिलेगी।

'एक लकड़हारा जंगल से लकड़ी लाकर उसे बेचकर बड़े कष्ट से जीवन-निर्वाह किया करता था। एक दिन किसी ने उसे कहा,—आगे बढ़ो। वह जब आगे बढ़ा तो उसे एक अच्छे मोटे लकड़ीवाले वृक्षों का जंगल मिला। उस दिन जितना सम्भव हुआ वह उन लकड़ियों को काटकर बाजार ले गया और उन्हें बेच हर रोज की तुलना में कहीं अधिक धन कमाया। फिर दूसरे दिन वह सोचने लगा, "मुझे तो उसने आगे बढ़ने को कहा है; आज और भी आगे जाकर देखूँ।" और आगे चलकर उसे चन्दन-वृक्षों का वन मिला। उन्हें काटकर उसने और भी अधिक धन कमाया। फिर बाद के दिन उसने सोचा—"मुझे तो आगे बढ़ने को कहा है।" उस दिन और आगे बढ़ने पर उसे ताम्बे की खान दिखाई दी। किन्तु उसमें भी न भूलकर वह प्रतिदिन और आगे बढ़ता गया और क्रमशः चाँदी, सोना तथा हीरे की खानों को पाकर बड़ा ही धनी आदमी बन गया। धर्म-मार्ग में भी ऐसा ही हुआ करता है। केवल आगे बढ़ते रहो। बस थोड़ा सा कुछ रूपदर्शन या ज्योतिदर्शन हुआ या कुछ सिद्धियाँ मिलीं इसीसे अपना सबकुछ हो चुका ऐसा मानकर व्यर्थ खुशी न मनाओ! केवल आगे बढ़ते रहो—धर्मराज्य की इति नहीं है। साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण—जिसका जैसा मार्ग है, जिसकी जैसी रुचि है—पूरी निष्ठा के साथ उसी पथ का अवलम्बन कर आगे बढ़ो—केवल आगे बढ़े चलो। मार्ग को लेकर विवाद मत करो—लक्ष्य की ओर बढ़ो; किसी प्रकार वहाँ पहुँचते ही फिर झगड़ा या विवाद नहीं रहेगा।

'ठाकुर का भाव पूरी तरह अपना न सकने के कारण × × × ने अपना दल बाँध लिया। ठाकुर कहा करते, "झुके हुए संकीर्ण गड्ढे में ही दल* जमता है।" सावधान! तुमलोग दलबन्दी मत करो। वैसा करने पर फिर ठाकुर का भाव नहीं रहेगा। जानते हो दल का अर्थ क्या है? जैसे कि एक दल कहता है, "मूर्तिपूजा बन्द करो, गंगाजल में इतनी भक्ति किसलिये? वह भी तो हाइड्रोजन तथा आक्सीजन से बना है; ये सारे कुसंस्कार हैं, इन्हें दूर करो।" फिर दूसरा दल बोलता है, 'निराकार सगुण की ही उपासना करना उचित है, निर्गुण ब्रह्म नाम की कोई वस्तु ही नहीं है।" फिर कोई कहता है, "यीशु की उपासना को छोड़ और कोई उपाय नहीं" इत्यादि। इसी को कहते हैं—दल।

परन्तु जो जितना बड़ा आधार लेकर महासागरवत् ठाकुर के पास पहुँचेगा वह उसी के अनुसार पाएगा। छोटा-सा आधार लेकर सब मार्गों पर चलने की कोशिश करने से भाव नष्ट होगा। एक मत को लेकर, मन-मुख एक करके उसी में दृढ़ निष्ठा के साथ आगे बढ़ो, सिर्फ आगे बढ़ते रहो; और जो अन्य सब मत हैं उनकी ओर दृष्टिपात मत करो।

ठाकुर का सर्वत्र चैतन्य-दर्शन :

'ठाकुर से मच्छरदानी टांगना या कुरते के बटन लगाना नहीं होता था और न दरवाजे को सांकल लगाना ही होता था। हमलोगों से वे बटन लगा देने को कहते। एक बार जब उनके सामने नया कपड़ा फाड़ा गया तो वे चीख उठे थे—मानो उन्हें ही पीड़ा हुई हो।"

---

* बंगला में 'दल' शब्द के दो अर्थ होते हैं : पहला अर्थ है—सम्प्रदाय और दूसरा शैवाल! तात्पर्य यह कि संकीर्णता के कारण ही दल बना करते हैं।

□

नारद-भक्ति-सूत्र

—श्रीमत् स्वामी वेदान्तानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

सप्तम अनुवाक

भक्ति के लक्षण

अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम् ॥५१॥

प्रेमस्वरूपं (प्रेम का स्वरूप) अनिर्वचनीयम् (अनिर्वचनीय) [है] ॥५१

वाक्यों के द्वारा प्रेम के स्वरूप को व्यक्त नहीं किया जा सकता ॥५१

प्रेम की प्राप्ति होने पर समस्त साधनाओं की परिसमाप्ति हो जाती है। प्रेम के स्वरूप को मुख से नहीं कहा जा सकता—उसका मात्र अनुभव होता है। इष्ट के आस्वादन का जो आनन्द है वह तो इष्ट से भिन्न नहीं है! उस प्रेम को यथार्थ रूप से भाषा में व्यक्त करने की सामर्थ्य किसी को नहीं है। यह इस प्रकार है, घी खाने में कैसा लगता है?—इस प्रश्न के उत्तर में कहा जायगा, घी जैसा खाने में लगता है वैसा ही।

प्रेम के स्वरूप का विश्लेषण करने, प्रेम की कोई सही-सही संज्ञा देने या भाषा के द्वारा यथावत् भाव से वर्णन करने योग्य शक्तिशाली मन किसी में भी नहीं देखा जाता। और, वाक्य की क्षमता भी तो सीमा में बँधी है! बाहरी वस्तु या व्यापार या मानसिक अनुभवों का यथावत् वर्णन करना ही असाधारण मननशील व्यक्ति के लिए भी प्रायः कठिन हो जाता है—प्रेमानुभूति का वर्णन करना तो दूर की बात है। मन जब भी विचारोन्मुखी होता है, अनुभव तभी दूर खिसक जाता है। इसलिए मन के द्वारा प्रेमानुभूति की स्मृति मात्र का विचार—वाक्य द्वारा उस स्मृति का ही वर्णन—करना संभव होता है। किन्तु, स्मृति और वस्तु का स्वरूप तो एक ही नहीं है!

मूकास्वादनवत् ॥५२॥

[प्रेम] मूकास्वादनवत् (गूँगे के रसास्वादन की भाँति है) [अनुभववेद्य होने पर भी वाक्य द्वारा उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता] ॥५२

गूँगे व्यक्ति के रसास्वादन की भाँति प्रेम केवल अनुभव द्वारा जानने योग्य है ॥५२

पहले श्री नारद ने कहा है, प्रेम के स्वरूप को वाक्य द्वारा प्रकाशित नहीं किया जा सकता। तथापि, इस सूत्र में लौकिक दृष्टान्त द्वारा प्रेम के स्वरूप को, जितना संभव है, समझाने की वे चेष्टा कर रहे हैं।

किसी गूँगे ने अन्य कुछ लोगों के साथ किसी सुस्वादु वस्तु का भोजन किया। रसास्वादन की क्षमता सब में समान रूप से रहने के कारण सब ने उस वस्तु के आस्वाद का समान भाव से उपभोग किया। किन्तु जिन लोगों के पास वाक्शक्ति थी केवल वे ही अनेक प्रकार के वाक्य-विन्यासों के द्वारा उस वस्तु का माधुर्य एक दूसरे को समझा पाये, फिर जिन लोगों को उस वस्तु के ऊपर समान प्रीति थी तथा आस्वादन के फलस्वरूप समान रूप से तृप्ति मिली थी, केवल वे ही उस वस्तु की उपादेयता के सम्बन्ध में एकमत हुए। किन्तु, गूँगा क्या करेगा? वह संकेत से, इशारे से अपने मन के आनन्द को व्यक्त कर संतुष्ट हो गया। इसी प्रकार प्रेम के

आस्वादन को हमलोग अपने अन्तःकरण में ही अनुभव कर सकते हैं—वाक्य के द्वारा उसे व्यक्त करने की सामर्थ्य हमलोगों को नहीं होती। एक ही भाव के भावुक प्रेमीजन केवल आपस में उस प्रेमस्वरूप के विषय में बातें कर परम तृप्ति का बोध करते हैं।

प्रकाशते क्वापि पात्रे ।।५३।।

[वह प्रेम] क्व अपि (किसी-किसी) पात्रे (पात्र में—उपयुक्त अधिकारी में) प्रकाशते (प्रकाशित होता है) ।। ५३

किसी-किसी उपयुक्त अधिकारी में प्रेम का प्रकाश देखा जाता है ।। ५३

उस प्रेम का स्वरूप यदि शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता तब अमृतस्वरूप प्रेम, जो सचमुच है ही, उसे प्राप्तकर किसी का भी जीवन धन्य होता है, इसका प्रमाण क्या है ? हाँ, प्रमाण है। किन्हीं भाग्यवान के हृदय में उस दिव्य प्रेम का प्रकाश देखा जाता है। प्रेम-प्राप्त कर वे जिस अतुल आनन्द के अधिकारी होते हैं, उनलोगों की देह, मन और आचरण में उस दिव्यानन्द का किंचित् प्रकाश हमलोगों को प्रेम के अस्तित्व और महात्म्य के सम्बन्ध में निःसंशय कर देता है। इस प्रकार के भाग्यवान प्रेमियों का दर्शन नहीं मिलने पर प्रेमस्वरूप भगवान् के अस्तित्व का संसार में प्रमाण नहीं मिलता। ऐसा होने पर कौन उस प्रेम के एक विन्दु को पाने की आशा में पागल होकर अपने समस्त सर्वस्व को त्यागकर निकल पड़ता ? साधना के सोपान की अंतिम सीढ़ी पर पहुँचने पर प्रेमानुभूति होती है। चित्त जब वासना-शून्य एवं शुद्ध होता है, तब अन्तःकरण में इस दिव्य प्रेम का प्रकाश होता है।

"किसी-किसी को प्रेमाभक्ति अपने-आप हो जाती है, स्वतः सिद्ध होती है। वह अपने बचपन से ही ईश्वर के लिए रोता है, जैसे प्रह्लाद।"

गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्धमानम् अविच्छिन्नं सूक्ष्मतरम् अनुभवरूपम् ।।५४।।

[प्रेम होता है] गुणरहितं (गुण रहित—सत्व, रजः, तमः इन तीन गुणों से भिन्न), कामनारहितं (स्वार्थ की गन्ध से शून्य), प्रतिक्षण वर्धमानम् (प्रतिक्षण वृद्धिशील), अविच्छिन्नं (विच्छेद रहित), सूक्ष्मतमा (अत्यन्त सूक्ष्म), अनुभवरूपम् (मात्र अनुभव-स्वरूप) ।। ५४

[प्रेम) अविच्छिन्न धारा के समान प्रतिपल वृद्धिशील, कामना और गुणादि से रहित, सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूति स्वरूप होता है ।।५४

प्रेम का स्वरूप मुख से क्यों नहीं कहा जा सकता, इसे इस सूत्र में श्री नारद बताते हैं। इसके द्वारा काम और प्रेम की भिन्नता कही गयी है।

पहले ही कहा गया है कि प्रेम अन्तःकरण के अनुभव की वस्तु है। वह अनुभव कैसा होता है? प्रतिक्षण हमलोग तो अनेक विषयों का अनुभव करते रहते हैं—फिर कहाँ चले जाते हैं वे सारे अनुभव ! कोई भी अनुभव स्थायी नहीं होता है। प्रेम का अनुभव वैसा क्षणिक नहीं है। जैसे अपने अस्तित्व के अनुभव को हम किसी समय छोड़ नहीं पाते, वैसे ही सौभाग्यवश प्रेम का उदय होने पर वह अनुभव प्रेमी को फिर कभी छोड़ नहीं पाता। इसीसे वैष्णव कवि कहते हैं—प्रीति (पि-रि-ति)—इन तीन अक्षरों की तुलना नहीं—

> 'सकल सुखेर आखर ए तिन,
> तुलना दिबो जे कि ?
> रसेर सागर ए तिन आखर,
> तुला दिबों जे कि ?
> (सभी सुखों के अक्षर हैं ये तीन,
> इनकी तुलना क्या दूँ ?
> रस का सागर हैं ये अक्षर तीन,
> इनकी तुलना क्या दूँ ?)

गुणों में कमी-बेशी होती रहती है। गुण के लिए यदि किसी को भी प्रेम किया जाता है, तो गुण के क्षय

से वह प्रेम भी चला जाता है। गुण-दोष के आधार पर ही मन या इन्द्रियाँ वस्तु-विशेष के ऊपर आसक्त या विरक्त होती हैं। जिन पदार्थों का कोई गुण है, जिसे कोई विशेषण देकर हम विशेषित कर पाते हैं, वाक्यों के द्वारा केवल उसी पदार्थ का वर्णन संभव है। किन्तु प्रेम को तो कोई विशेषण देना संभव नहीं। लौकिक प्रेम की गंभीरता में भी हम देखते हैं कि प्रीति प्रेमास्पद के गुण-दोष की अपेक्षा कर उद्भूत नहीं होती, बल्कि वह प्रेमी के हृदय से स्वत: प्रस्फुटित होती है। फिर, प्रेम में सत्व, रज:—तम: इन तीनों गुणों में से किसी का लेशमात्र भी प्रवाह नहीं रहता। इन तीन गुणों के होते ही हमलोग कभी सुख और कभी दुःख का भोग करते हैं। जबतक 'कच्चा मैं' रहता है तबतक इस सुख-दुःख का भोग होता है। किन्तु 'कच्चा मैं' के नहीं जाने पर प्रेम का स्वाद नहीं मिलता। और 'कच्चा मैं' गया तो तीन गुणों का बन्धन भी मिट गया। यह बात अन्य रीति से भी कही जा सकती है। तीन गुणों से विगत हो जाने पर साधक के 'कच्चा मैं' का नाश हो जाता है और उसमें प्रेम का उदय होता है। इसी से प्रेम गुणरहित होता है।

प्रेम में किसी कामना का स्थान नहीं है। कामना की पूर्त्ति होते ही काम्य वस्तु के प्रति आसक्ति समाप्त हो जाती है। कामनापूर्त्ति में असंभावना होने पर काम्य वस्तु के प्रति विरक्ति आ सकती है। किन्तु प्रेम में कामना की नाममात्र की गंध नहीं रहती—इसीलिए इसका क्षय भी नहीं होता। प्रेमी अपने प्रेमास्पद के निकट उपस्थित होने पर अपनी किसी स्वार्थ-सिद्धि की आकांक्षा नहीं करते। प्रेमास्पद के सुख से ही वे सुखी होते हैं।

काम से उत्पन्न प्रेम में भोग के बाद अवसाद होता है। भोग का आनन्द चाहे कितना ही मधुर और कितना ही गंभीर क्यों न हो, अधिक दिनों तक उसमें डूबे रहना संभव नहीं होता—एक-न-एक दिन उसमें अरुचि उत्पन्न होती ही है। किन्तु प्रेम में अवसाद नहीं है—जितना ही इसका आस्वादन किया जाय, आनन्द की मात्रा उतनी ही बढ़ती रहती है।

फिर प्रेमानुभव में विच्छेद या अवकाश नहीं होता। प्रेमी का जो विरह है वह रसास्वादन का प्रकारान्तर मात्र है। प्रेम की गहनता में प्रेमी और प्रेमास्पद के बीच का व्यवधान भी मिट जाता है।

प्रेम को सूक्ष्मतर कहा गया है। बुद्धि चाहे कितनी भी सूक्ष्म और परिमार्जित क्यों न हो, उस बुद्धि के द्वारा प्रेम की नाप-तौल करने जाते ही प्रेम दूर चला जाता है। फिर प्रेमी के हृदय का अनुभव अन्य किसी की भी बुद्धि-विचार के द्वारा पकड़ में नहीं आता।

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति, तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति ॥५५॥

[प्रेमी] तत् (उस प्रेम को) प्राप्य (प्राप्त कर) तत् एवं (केवल उसी प्रेम का) अवलोकयति (दर्शन करते हैं), तत् एव (उसे ही) शृणोति (श्रवण करते हैं), तत् एव (उसे ही), भाषयति (बोलते हैं), तत् एव (उसकाही), चिन्तयति (चिन्तन करते हैं) ॥ ५५

इस प्रेम को प्राप्तकर प्रेमी केवल इस प्रेम का ही दर्शन करते हैं, इसी प्रेम का श्रवण करते हैं, इसी प्रेम का वर्णन करते हैं एवं इसी प्रेम का चिन्तन करते हैं ॥ ५५

प्रेमी के लिए प्रेम और प्रेममय में अभेद होता है। इष्ट प्रेम में जब वे विभोर होते हैं, तब उनके इन्द्रिय-मन-बुद्धि के समक्ष और अन्य किसी विषय का प्रकाश नहीं होता; इस अवस्था में उनके सारे चिन्तनों और सारी चेष्टाओं का प्रेमास्वादन में पर्यवसान हो जाता है। इष्ट को ही भीतर-बाहर देखने, उनकी ही बात सुनने, उनके विषय में ही बोलने तथा उनका ही चिन्तन करने के सिवा प्रेमी को और कोई कार्य नहीं रहता।

"उन्हें चर्मचक्षु से नहीं देखा जा सकता। वे दिव्य चक्षु प्रदान करते हैं तभी उन्हें देखा जाता है। विश्व-रूप का दर्शन कराने के समय भगवान् ने अर्जुन को

दिव्यचक्षु प्रदान किया था। —साधना करते-करते एक प्रेम का शरीर हो जाता है और साधक को प्रेम की आँखें और प्रेम के कान हो जाते हैं; उन्हीं आँखों से वह ईश्वर को देखता है, उन्हीं कानों से ईश्वर की वाणी सुनी जाती है। फिर प्रेम का ही लिंग और योनि होती है।"—यहाँ तक सुनकर स्वामी विवेकानन्दजी (तब श्रीनरेन्द्रनाथ) हँस पड़े थे। किन्तु श्रीरामकृष्ण-देव शिष्य के अविश्वास से रंचमात्र खिन्न हुए बिना कहने लगे, "इस प्रेम के शरीर का आत्मा के साथ रमण होता है।"

यह तो अनुभव का विषय है! मन-बुद्धि के अशुद्ध रहने पर इसे कैसे समझ सकते हैं?

"ईश्वर के प्रति पर्याप्त प्रेम नहीं होने पर चारों ओर ईश्वरमय देखना संभव नहीं हो पाता। तब फिर 'वे मैं' इसी का बोध होता है। अधिक नशा होने पर शराबी कहता है, 'मैं ही काली हूँ'। रात-दिन ईश्वर का चिन्तन करने पर उन्हें चारों ओर देखा जाता है। जैसे दीपशिखा की ओर काफी देर तक एक दृष्टि से निहारते रहने पर कुछ क्षणों के बाद चारों ओर शिखा दिखाई पड़ती है।"

"भक्ति की प्रबलता रहने पर प्रत्येक मनुष्य में ही ईश्वर का दर्शन होता है। प्रेमोन्माद होने पर सभी जीवों में ईश्वर का साक्षात्कार होता है। गोपियों ने सभी जीवों में श्रीकृष्ण का दर्शन किया था। उनमें से प्रत्येक ने कहा था, मैं कृष्ण हूँ। पेड़ों को देखकर वे कहती थीं, ये तपस्वी हैं—श्रीकृष्ण का ध्यान कर रहे हैं। तृणों को देखकर कहती थीं, श्रीकृष्ण का स्पर्शकर पृथ्वी को रोमांच हो गया है। उस समय उनकी उन्माद की अवस्था थी।"

"सही-सही भक्ति होने पर सामान्य वस्तु से भी ईश्वर की उद्दीपना होकर भक्ति-भाव से भक्त विभोर हो जाता है। चैतन्यदेव ने एक बार मेड़गाँव से होकर जाते-जाते सुना, इस गाँव की मिट्टी से मृदंग का खोल बनाया जाता है। तुरत ही वे भाव-विभोर हो गये—क्यों नहीं, कीर्तन के समय खोल बजता है। मेघ को देखने पर मयूर को उद्दीपन होता है। तब आनन्द से अपने पंख फैलाकर वह नृत्य करता है। जब किले के मैदान में मुझे बैलून दिखाने ले गया था तब मैंने देखा कि अँग्रेज का लड़का एक पेड़ पर उठंगकर त्रिभंगी मुद्रा में खड़ा था। देखते ही तुरत कृष्ण का उद्दीपन हुआ और मैं समाधिस्थ हो गया। बादल अथवा मयूर का कंठप्रदेश देखकर श्रीमती राधिका को श्रीकृष्ण का उद्दीपन होता था और वे बाह्यशून्य हो जाती थीं।"

'भक्त को भी एकाकार का ज्ञान होता है। वह देखता है, ईश्वर ही सब कुछ हो गये हैं। ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जब पक्की भक्ति होती है, तब इसी प्रकार का बोध होता है। बहुत पित्त के जम जाने पर जब पीलिया रोग हो जाता है तब सबकुछ पीला दिखाई पड़ता है। श्याम का चिन्तन करते-करते राधा ने सब कुछ श्याममय देखा, और स्वयं भी वह अपने को श्याम ही समझने लगी। भक्त भी ईश्वर का चिन्तन करते-करते अहं शून्य हो जाता है फिर वह देखता है, 'वे ही मैं हैं', "मैं ही वे हूँ।"

"ईश्वर के प्रति जब प्रेम होता है तब केवल उनकी ही कथा कहने और सुनने की इच्छा होती है।"

"त्यागीजन कामिनी-कांचन से मन हटाकर उसे केवल भगवान् को अर्पित करते हैं। उनको ईश्वर को छोड़कर और कुछ अच्छा नहीं लगता। जो लोग ठीक ठीक त्यागी हैं, वे लोग ईश्वरीय बात को छोड़कर अन्य बात मुँह पर नहीं लाते। जहाँ विषय चर्चा होती है, उस स्थान से वे चले जाते हैं। मधुमक्खी को मधु छोड़कर कोई अन्य वस्तु अच्छी नहीं लगती। वे फूल पर बैठती हैं केवल मधुपान के लिए।"

"एकबार ईश्वर के आनन्द का आस्वाद पा लेने पर उस आनन्द के लिए (भक्त) छटपटाता रहता है। तब संसार रहे या जाय! भगवान् के आनन्द को पा लेने पर संसार निःस्वाद लगता है। तब कामिनी

और कांचन की बात से हृदय फटने लगता है। दुशाला पा लेने पर दूसरी चादर अच्छी नहीं लगती। ईश्वरानन्द के सामने विषयानन्द और रमणानन्द! उनके रूप का चिन्तन करने पर अप्सराओं का रूप चिता की राख के समान लगता है।"

"हनुमान ने कहा था, 'मैं तिथि-नक्षत्र नहीं जानता, मैं मात्र एक राम का चिन्तन करता हूँ।' ईश्वर पर सोलहों आने मन लगने पर यही अवस्था हो जाती है। राम ने कहा, 'हनुमान, तुमने सीता का संवाद लाया है, उसे कैसा देखा, बोलो!' हनुमान ने कहा, 'हे राम, मैंने देखा कि सीता का केवल शरीर पड़ा हुआ है। उसके भीतर मन-प्राण नहीं हैं। सीता ने अपने मन-प्राण तो आपके पाद-पद्मों पर समर्पण कर दिये हैं!"

गौणी त्रिधा गुणभेदादार्तादि भेदाद् वा ॥५६॥

गुणभेदात् (गुणभेद— सत्व, रजः और तमः तीन प्रकार के गुणभेद के कारण), वा (अथवा), आर्तादिभेदात् (आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी— भक्त के इन तीन प्रकार के भेदों के कारण), गौणी (गौणी भक्ति), त्रिधा (तीन प्रकार की) [होती है] ॥ ५६

सत्व, रजः और तमः—इस त्रिविध गुण भेद के कारण, अथवा आर्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी—भक्तों के इन तीन प्रकार के भेदों के कारण, गौणी भक्ति तीन प्रकार की होती है। ५६

यहाँ तक जिस प्रेमा भक्ति के विषय का वर्णन हुआ, उसका प्रकाश बहुत कम भाग्यवान् व्यक्ति के जीवन में देखा जाता है। प्रह्लाद की भाँति गुणातीत भक्त, जो भगवान की प्रसन्नता के लिए ही प्रेम करते हैं, संसार में अति विरल हैं। अधिकांश भक्त गौणी या वैधी भक्ति का ही अवलम्बन कर भगवान् की ओर अग्रसर होते हैं।

सात्विक, राजसिक और तामसिक भक्त का लक्षण भगवान् कपिल द्वारा इस प्रकार वर्णित हुआ है—

अभिसन्धाय यो हिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा।
संरम्भी भिन्नदृग्भावं मयि कुर्यात् स तामसः॥
विषयानभिसन्धाय यश ऐश्वर्यमेव वा
अर्चादावर्चयेत् यो मां पृथग् भावः स राजसः॥
कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मिन् वा तदर्पणम्।
यजेद् यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्विकः॥
भा० ३।२९।८-१०

अर्थात्—'जो भेददृष्टिसम्पन्न क्रोधी पुरुष अपने भीतर हिंसा, दम्भ और ईर्ष्या रखकर मेरा भजन करता है वह मेरा तामसिक भक्त है। विषय, यश या ऐश्वर्य की कामना रखकर जो भेददर्शी व्यक्ति प्रतिमा आदि से मेरी अर्चना करता है वह राजसिक भक्त है। और जिस व्यक्ति का भेद-भाव तो नहीं जाता, किन्तु जो अपने पापक्षय के उद्देश्य से एवं ईश्वर की प्रीति-कामना के लिए कर्त्तव्य-बोध से मेरी उपासना करता है वह मेरा सात्विक भक्त है।'

इसलिए, यहाँ देखा गया कि तामसिक, राजसिक और सात्विक — इन तीनों श्रेणियों के भक्तों में भेद ज्ञान रहता है। केवल गुणातीत भक्तों में ही अभेद बोध उत्पन्न होता है।

वृहत् नारदीय पुराण में इन सात्विक आदि त्रिविध भक्तियों में से प्रत्येक को उत्तम, मध्यम, और अधम भेद के अनुसार तीन-तीन भागों में बिभक्त किया गया है। यथा—

जो व्यक्ति दूसरे के विनाश के लिए श्रद्धापूर्वक हरि का भजन करता है, उसकी वह तामसी भक्ति अधम कोटि की होती है। कपटतापूर्वक भगवान की जो भक्ति की जाती है, वह मध्यम श्रेणी की तामसी भक्ति है। दूसरे को ईश्वर की आराधना में रत देखकर ईर्ष्या के वशीभूत हो यदि कोई भगवान् की उपासना में रत हो तो उसकी वह तामसी भक्ति उत्तम श्रेणी की होगी।

धन और ऐश्वर्य की कामना से श्रद्धापूर्वक जो भक्ति प्रदर्शित होती है, वह अधम राजसी भक्ति है। यश की कामना लेकर परम भक्ति के साथ जो भक्त उपासना करता है, उसकी राजसी भक्ति मध्यम श्रेणी की होती है। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य एवं सायुज्य

मुक्ति की प्रार्थना उत्तमा राजसी भक्ति से उत्पन्न होती है।

पापक्षय के लिए श्रद्धासहित उपासना करने की प्रवृत्ति अधम सात्विकी भक्ति से उत्पन्न होती है। 'ये सब कर्म श्री भगवान को प्रिय हैं'—इस प्रकार विचारकर जो भक्त कर्मसमूहों का अनुष्ठान करता है उसकी सात्विकी भक्ति मध्यम श्रेणी की होती है। और उत्तम सात्विक भक्त दासभाव से सर्वदा श्रीभगवान् की सेवा करते हैं। श्रीभगवान् की महिमा का श्रवण करने से ही उनका मन तन्मय हो जाता है।

और सर्वोत्तम गुणातीत भक्त होते हैं—
अहमेव परो विष्णुर्मयि सर्वमिदं जगत्।
इति यः सततं पश्येत् तं विद्याद् उत्तमोत्तमम्॥

नारदीय पुराण १४ वाँ अध्याय, २०६ श्लोक।

'मैं ही वह परम विष्णु हूँ, समस्त जगत् मेरे भीतर ही अवस्थित रहता है'—इस भाव से जो सर्वदा स्वयं को ईश्वर और जगत् के साथ अभेदभाव से देखते हैं, वे उत्तम से भी उत्तम भक्त हैं।

"भक्त तीन श्रेणी के होते हैं - उत्तम, मध्यम और अधम। उत्तम भक्त कहता है, 'जो कुछ देखता हूँ, सभी उनका एक-एक रूप हैं। वे ही सब हो गये हैं।' मध्यम भक्त कहता हैं, 'वे हृदय में अन्तर्यामी के रूप में रहते हैं।' अधम भक्त कहता है, 'वहाँ ईश्वर हैं'—ऐसा कहकर, आकाश की ओर वह दिखा देता है।"

'जिसका जैसा भाव होता है, वह ईश्वर को उसी प्रकार देखता है। तमोगुणी भक्त देखता है कि माँ छागल खाती है, और वह बलि प्रदान करता है। रजोगुणी भक्त अनेक प्रकार के व्यंजन भोजन बनाकर अर्पित करता है। सत्वगुणी की पूजा दूसरों को दिखाई नहीं पड़ती। उसकी पूजा में आडम्बर नहीं होता। फूल नहीं मिले तो बेलपत्र-गंगाजल अर्पित कर पूजा करता है। थोड़ी मुरकी या बतासा से अपराह्न में भोग निवेदित करता है। अथवा कभी भगवान् को थोड़ी खीर बनाकर देता है। और है त्रिगुणातीत भक्त। उसका बालक जैसा स्वभाव होता है। भगवान् का नाम-जप करना ही उसकी पूजा है।"

"तमोगुणी और रजोगुणी"—आर्त ओर अर्थार्थी भक्त कामना परायण होते हैं। सकाम भक्ति करते-करते निष्काम भक्ति होती है। ध्रुव ने तपस्या की थी राज्य-प्राप्ति के लिए किन्तु, उन्होंने भगवान् को पाया था। उन्होंने कहा था—'यदि काँच की खोज के क्रम में कोई सोना पा जाय तो उसे छोड़ेगा क्यों?'

सकाम भक्त के लिए वैधी भक्ति का विधान है।

'इतना जप करना होगा, इतना ध्यान करना होगा, इतना याग-यज्ञ, होम करोगे, उपचार में इतनी पूजा करनी होगी, पूजा के समय इन सब मंत्रों का पाठ करना होगा, इतने उपवास करने होंगे, तीर्थों में जाना होगा, इतने बलि-प्रदान करने होंगे—ये वैधी भक्ति हैं। ये सब प्रचुर रूप से करते-करते तब राग-भक्ति आती है। वैधी भक्ति जैसे आती है, वैसे ही जाती भी है।"

शास्त्र में अनेक कर्म करने को कहा गया है, इसीसे करता हूँ,—ऐसी भावना को वैधी-भक्ति कहते हैं। शुरू में अपने पाप पर थोड़ा विचार करना होगा, कैसे पाप से मुक्ति होगी, इसके लिए व्याकुल होकर प्रार्थना करनी होगी। किन्तु, उनकी कृपा से यदि एकबार प्रेम या रागानुगा भक्ति आ जाय तब पाप-पुण्य सब विस्मृत हो जाते हैं।"

उत्तरस्मादुत्तरस्मात् पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति ॥५७॥

उत्तरस्मात् उत्तरस्मात् (उत्तरोत्तर से), पूर्वपूर्वा (पूर्व-पूर्व प्रकार की भक्ति) श्रेयाय (अधिकतर मंगलदायक), भवति (होती है) ॥ ५७

उत्तरोत्तर प्रकार की भक्ति की अपेक्षा पूर्व-पूर्व प्रकार की भक्ति अधिकतर कल्याणकारी होती है ॥५७

साधना के द्वारा तमोगुणी मन को रजोगुण प्रवण करना होगा फिर क्रमशः रजोगुण का परिहारकर सत्वगुण के आश्रय के लिए प्रयत्नशील होना होगा। इसीसे श्रीनारद कहते हैं, तामसिक भक्त से राजसिक भक्त और राजसिक से सात्विक भक्त श्रेष्ठ हैं। सात्विक भक्ति से गुणातीत भक्ति की प्राप्ति की संभावना होती है। इसी प्रकार आर्त की अपेक्षा अर्थार्थी एवं अर्थार्थी की अपेक्षा जिज्ञासु भक्त श्रेष्ठ होते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता के ७ वें अध्याय के १६ वें श्लोक में 'आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी'—कहकर जो अर्थार्थी की अपेक्षा जिज्ञासु को तथा जिज्ञासु की अपेक्षा आर्त को श्रेष्ठत्व प्रदान किया है, ऐसा मानने का कोई कारण नहीं है। ऐसा होने पर ज्ञानी भक्त का स्थान सब से नीचे हो जाता है। तब यदि आर्तभक्ति का अर्थ भगवान् के लिए चरम व्याकुलता को लक्ष्य किया जाय, तो ऐसा होने पर आर्त भक्ति को प्रथम स्थान दिया जा सकता है।

बोध कथा

अब लौं नसानी

प्रस्तुति : सुरेश कुमार प्रशांत

श्याम-सलिला यमुना के निर्जन तट पर ऋषि सौभरि की कुटी। वायु पीकर, जल ग्रहण कर, पत्ते चबाकर, निराहार रहकर, पंचाग्नि तापकर, कभी जल के मध्य तथा कभी कुटी के नीचे अंध-गुफा में रहकर तपस्या करते उन्हें हजारों वर्ष बीत गये थे। शरीर सूखकर कांटा हो गया था, पर ललाट अग्नि-पुंज की तरह चमक रहा था। उनकी तपस्या पूरी हुई। ध्यान टूटने पर उन्होंने देखा कि सभी देवता उनकी स्तुति कर रहे हैं तथा मनोवांछित पदार्थ देने को तैयार हैं। पर, ऋषि ने अत्यंत विनयपूर्वक कुछ भी माँगने से अस्वीकार किया। देवगण लौट चले तथा रास्ते भर सौभरि की जितेन्द्रियता तथा सात्विक एवं निष्काम तपस्या का विस्मय-विमुग्ध वर्णन करते रहे। ऋषि पुनः समाधिस्थ हो गये।

कुछ दिनों के बाद। रात्रि का अंतिम प्रहर। शांत वातावरण। दूधिया चान्दनी में वसुधा स्नान कर रही थी। फूल हँस रहे थे। शीतल-मंद-सुगंध समीरण सम्पूर्ण चर-अचर के मन-प्राणों को पुलकित कर रहा था। सामने यमुना-जल में छोटी-छोटी लहरें उठ गिर रही थीं, मानो कोई माता अपने धृष्ट शिशु को दुलार-कर अंक में सहेज रही हो। तभी छप-छप की आवाज हुई। ऋषि का ध्यान टूट गया। उन्होंने देखा—जल-सतह पर अनेक पत्नियों से घिरा मत्स्यराज जल-क्रीड़ा में मग्न है। उसकी पुलक तथा प्रसन्नता ने ऋषि का अंतस्तल छू लिया। उद्वेलित ऋषि को मत्स्य-राज के सौभाग्य पर ईर्ष्या हो आयी—"कितना सुखी है! सचमुच जीवन का चरम आनंद तो इस गार्हस्थ्य-जीवन में ही है। कैसी भूल' आज तक इस सुख की कल्पना तक मैंने नहीं की थी। तब देर क्या है…।"

प्रातः होते ही ऋषि सम्राट् मान्धाता के दरबार में उपस्थित हो याचना कर रहे थे—"राजन्, आप अपनी पचास रूप-गुण-सम्पन्न युवती कन्याओं में से किसी एक को मुझे दे दें।"

सम्राट् हतप्रभ! जर्जर शरीर, हिलते दांत, पके बाल, झूलती त्वचाएँ' पर मृत्यु के बदले युवती दीख रही है। न घर, न सम्पत्ति, न यौवन…। कुपित भी हुए, पर स्पष्ट विरोध करने का साहस नहीं हुआ—एक तो ब्राह्मण दूसरे तपस्वी ''क्या पता शाप दे दें। तभी उन्हें एक तरकीब सूझ गयी। बोले—ऋषिवर, आप मेरे अंतःपुर में चले जायँ तथा जो कन्या आपको वरण कर ले उसे आप ग्रहण कर लें।

सौभरि मान्धाता की होशियारी ताड़ गये। मन-ही-मन सोचने लगे—"अहंकारी राजा, तुम्हारी तो क्या, देव-कन्याएँ भी मेरे रूप-यौवन पर रीझ जायँगी। देख, मेरी शक्ति…।" अंतःपुर में जब प्रहरी के साथ वे पहुँचे, पूर्ण युवा हो गये थे—कांति युक्त, सुन्दर पुरुष। परिणामतः, पचासों कन्याएँ उन पर आसक्त हो परस्पर विवाद करने लगीं कि ये तो सिर्फ मेरे लिए हैं। अंत में, ऋषि ने पचासों कन्याओं का पाणि-ग्रहण किया तथा अपनी कुटी की तरफ चल पड़े।

पर अब तो कुटी से काम नहीं चलता। सौभरि ने अपने पुण्य का स्मरण किया और सामने एक विशाल महल खड़ा था। अनेक वन-उपवनों से युक्त निर्मल जलाशय, शय्या, वस्त्र, आभूषण, स्नान, शृंगार, सुस्वादु भोजन, पुष्पमालाएँ, दास-दासी, चारण-वृन्द, हाथी-घोड़े…प्रत्येक वस्तु उनके समक्ष प्रस्तुत होती गयी। किसी भी पदार्थ की कमी होने पर वे अपने पुण्य का स्मरण करते तथा उसे प्राप्त कर लेते। इस प्रकार वे अनेक वर्षों तक सभी इन्द्रियों को तुष्ट करने का प्रयास करते रहे। एकबार मान्धाता अपनी पुत्रियों की स्थिति जानने के लिए उधर निकले तो उनका सारा गर्व चूर हो गया कि वे ही पृथ्वी के सबसे बड़े सम्पत्तिवाले तथा भोगकर्त्ता हैं। सौभरि को सैकड़ों संतानें भी हुईं।

एकदिन उन्हें किसी पदार्थ की जरूरत हुई। पुण्य का स्मरण किया। पर पदार्थ उपस्थित नहीं हुआ। ऋषि को चिन्ता हुई। ध्यानस्थ होने पर उन्होंने देखा—उनका सारा पुण्य समाप्त हो चुका है। अब क्या हो?

ऋषि खिन्न हो गये। कैसे चलेगी यह गृहस्थी? तो मेरी सारी तपस्या निष्फल हो गयी? आह! इस कामना-यज्ञ में मेरी सारी कठिन तपस्या स्वाहा हो गयी। जैसे इंधन से आग कभी भी संतुष्ट नहीं होती, उसी तरह मेरी कामनाएँ भी संतुष्ट नहीं हुईं तथा सारे पुण्य भी नष्ट हो गये…धिक्कार है मुझे…कहाँ गया मेरा ब्रह्म-ज्ञान और ब्रह्म तेज…एक सामान्य मछली की जल-क्रीड़ा के पलभर के दर्शन ने मुझे कहाँ-से-कहाँ पहुँचा दिया…एक से पचास तथा पचास से सहस्रों…। सोचते-सोचते घोर विलाप करते हुए वे उठे तथा घोर जंगल की तरफ चल पड़े…दूर…सबसे दूर बहुत दूर। सोचते जाते थे—अब लौं नसानी अब ना नसैहों।

+

गोमिया में श्रीरामकृष्ण-उत्सव

गोमिया, ८ अप्रैल, स्थानीय 'रामकृष्ण विवेकानन्द सेवाश्रम' के तत्वावधान में गत ६ एवं ७ अप्रैल '८५ को भगवान श्री रामकृष्ण परमहंस की १५०वीं जन्म शती का सार्वजनिक आयोजन किया गया।

स्थानीय अल्पवय छात्रों ने बंगला एकांकी 'वीरेश्वर विवेकानन्द' का मचन किया (६अप्रैल १९८५)। तदुपरांत रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ देवघर के श्रीमत् स्वामी निखिलात्मानन्द ने 'श्री राम तथा श्री रामकृष्ण एवं रामचरित मानस' पर प्रभावशाली प्रवचन किये। सबसे अन्त में राजेन्द्र कॉलेज, छपरा के डाक्टर केदारनाथ लाभ ने आधुनिक जीवन के संदर्भ में श्री रामकृष्ण के उपदेशों की सार्थकता पर सारगर्भित एवं सर्वग्राह्य भाषण दिया।

७ अप्रैल १९८५ को प्रभातफेरी का आयोजन किया गया। दो घंटों तक साधुओं तथा भक्तों का दल 'रामकृष्ण शरणम्' गीत का सस्वर गायन करते हुए चलता रहा।

अपराह्न में रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के सचिव श्री शुद्धव्रतानन्द जी महाराज की अध्यक्षता में सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। छोटानागपुर स्वशासी विकास प्राधिकार के उपाध्यक्ष श्री राजेन्द्र नाथ दान मुख्य अतिथि थे। श्री दान ने सेवाश्रम का Patron बने रहना स्वीकार करते हुए आश्वासन दिया कि वे सेवाश्रम द्वारा बनायी गयी उन सारी योजनाओं के लिए पूरी सहायता करेंगे जो शैक्षणिक, शारीरिक एवं अन्य क्षेत्रों में बच्चों के विकास को मद्दे नजर रखते हुए रामकृष्ण मिशन के उद्देश्यों के अनुरूप हों। उन्होंने गोमिया की जनता का आह्वान किया कि आगे बढ़कर इस संस्था की सहायता करें।

डा० केदारनाथ लाभ ने अपने भाषण में विश्व की विनाशकारी परिस्थितियों, देश की बहुआयामी समस्याओं और वरिष्ठ सरकारी पदाधिकारियों में व्याप्त दायित्व हीनता और स्वार्थपरता का उल्लेख किया तथा भगवान रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द के उपदेशों का हवाला देते हुए जोर देकर कहा कि बिना आध्यात्मिक और नैतिक शिक्षा के हम देश की सेवा नहीं कर सकते।

श्रीमत् स्वामी निखिलेश्वरानन्दजी महाराज ने मानवता और चरित्र निर्माण से सम्बन्धित स्वामी विवेकानन्द के विचारों और सिद्धांतों का गंभीर विवेचन किया।

श्रीमत् स्वामी निखिलात्मानन्द जी महाराज ने परामर्श दिया कि मानवता की सेवा के लिए हमें अपनी जाति, सम्प्रदाय, और अन्य भेदभावों को भूलकर एकजुट हो जाना चाहिए क्योंकि हम सभी एक ही ईश्वर की सन्तान हैं। आज मनुष्य ही मनुष्य का शोषण कर रहा है। मनुष्य ही नैतिक मूल्यों के ह्रास के लिए उत्तरदायी है। अतः आज नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा की समाज को नितांत आवश्यकता है।

श्रीमत स्वामी शुद्धव्रतानन्दजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में बताया कि हमारा उद्भव ब्रह्म से हुआ है, हमारा विकास ब्रह्म में होता है और अन्ततः हम ब्रह्म में लीन हो जाते हैं, इसलिये हम सब ईश्वर की सन्तान हैं। हमें भगवान श्री रामकृष्ण में आस्था और विश्वास रखना चाहिए। वह हमारा पथ प्रदर्शन करते हुए ब्रह्मत्व का मार्ग दिखा सकते हैं।

अंत में एक शिक्षाप्रद हिन्दी फिल्म का प्रदर्शन किया गया, जिसे एक हजार से अधिक लोगों ने देखा और अनुप्राणित हुए।

पवित्र होना और दूसरों का हित करना—सभी उपासनाओं का यही सार है। जो दरिद्रों में, दुर्बलों में और रोगियों में शिव को देखता है, वही शिव की सच्ची पूजा करता है और यदि वह केवल प्रतिमा में शिव को देखता है, तब उसकी पूजा मात्र प्रारंभिक है।

—स्वामी विवेकानन्द

This is the gist of all worship—to be pure and to do good to others. He who sees Siva in the poor, in the weak, and in the diseased, really worships Siva; and if he sees Siva only in the image, his worship is but preliminary.

—SWAMI VIVEKANANDA

स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज